

अक्टूबर-दिसम्बर, 2023

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन

अभिव्यक्ति



मूल्य : ₹ 20

सदस्य बनें

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

समकालीन

अभिव्यक्ति

(त्रैमासिक पत्रिका)

‘समकालीन अभिव्यक्ति’ एक साहित्यिक आन्दोलन है। कोई भी आन्दोलन जन भागीदारी के बिना सफल नहीं हो सकता। कृपया पत्रिका से जुड़कर आन्दोलन की सफलता सुनिश्चित करें। आपकी सदस्यता पत्रिका के लिए प्राणवायु है। वार्षिक या आजीवन सदस्य बनकर आप पत्रिका को दीर्घजीवी बना सकते हैं।

सदस्यता शुल्क हेतु बैंक खाते का विवरण

A/C NO : 50100251363948  
A/C Holder's Name : POONAM MISHRA  
Bank Name : HDFC BANK LTD  
IFSC CODE : HDFC0001671



सम्पादक

‘समकालीन अभिव्यक्ति’

फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं. 7,  
महरौली, नई दिल्ली - 110030

कृपया ध्यान दें

पत्रिका की वेबसाइट का पता बदल गया है।  
नया पता है -

[www.samkaleenabhivyakti.in](http://www.samkaleenabhivyakti.in)

-सम्पादक

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक चेतना की वैविध्यपूर्ण प्रस्तुति

# समकालीन अभिव्यक्ति

वर्ष 21, अंक 88

अक्टूबर - दिसम्बर, 2023

**संपादकीय सम्पर्क:**

फ्लैट नं 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं. 7,  
महरौली, नई दिल्ली - 30

E-mail: samkaleenabhivyakti@gmail.com

**पत्रिका शुल्क:**

सामान्य प्रति - 20/- वार्षिक - 80/-

वार्षिक (संस्था) 100/- आजीवन - 1000/-

संपादन/संचालन - पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचारों से  
संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है।

समकालीन अभिव्यक्ति से संबंधित सभी विवाद दिल्ली  
न्यायालय के अधीन होंगे।

स्वामी/प्रकाशक/मुद्रक - उपेन्द्र कुमार मिश्र द्वारा ए.आर.इन्टरप्राइजेज,  
2811, गली गढ़ैया, कूचे चालान, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002  
से मुद्रित तथा फ्लैट नं. 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं. 7, महरौली,  
नई दिल्ली - 110030 से प्रकाशित, संपादक - उपेन्द्र कुमार मिश्र

संपादक

**उपेन्द्र कुमार मिश्र**

**093 50899583**

सहसंपादक

**हरिशंकर राठी**

**0965403 0701**

दर्शन एवं संस्कृति संपादक

**संतोष कुमार शुक्ल**

सहायक संपादक

**नवल किशोर भट्ट**

मुखपृष्ठ एवं रेखांकन

**सुषमा गजापुरे**

टाइप सेटिंग

**विनोद यादव**

**98913 53 13 9**

वेबसाइट

**www.samkaleenabhivyakti.in**

## अनुक्रम

### कहानियाँ

- 09 जुगाड़ - रूपसिंह चन्देल  
24 आमी आसची लौट कर आती हूँ - डॉ. रंजना जायसवाल  
44 बिटिया - शुभदा मिश्र  
57 सतीत्व बनाम स्त्रीत्व - अनीता श्रीवास्तव  
60 राग-विराग - संजय कुमार सिंह

### लेख

- 13 शिवानी के भीतर का शिव - सुषमा गजापुरे  
41 निराला की ग़ज़लों का कथ्य और शिल्प - डॉ. जियाउर रहमान जाफरी  
66 संबंधों का समाजशास्त्र - सेवाराम त्रिपाठी

### मुक्तक / कविताएँ / ग़ज़लें

- 8 गिरीश श्रीवास्तव  
27 अजेय पांडेय  
30 रामदरश मिश्र  
31 अविनाश  
31 संजीव प्रभाकर  
32 ओम धीरज  
33 सुभाष राय  
35 शिव कुशवाहा  
36 राजेश्वर वशिष्ठ  
56 लाल देवेन्द्र कुमार

### व्यंग्य

- 28 गिरे तो गिरे कैसे ! - प्रभात गोस्वामी  
64 डाक वितरण पर निबंध - जवाहर चौधरी

### यात्रा - वृत्तांत

- 51 नेपाल की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक यात्रा - माँगन मिश्र 'मार्त्तण्ड'

### धरोहर

- 38 भारतीय शिल्प की आत्यांतिक कल्पना :  
नटराज - अनिल डबराल

### स्थायी स्तंभ

- 05 एक दुनिया और भी है  
20 वक्रोक्ति  
12 अंदाज - ए-बयाँ  
70 साहित्यिक विनोद  
71 खोज - खबर

### पोथी की परख

- 75 दो मिसरों में सार्थक बात कहने का हुनर  
77 आदमी की नब्ज - शिक्षित नारी की कहानियाँ  
78 सुचितित उपन्यास - लोकतंत्र के पहलू।  
79 किसान चेतना का उपन्यास : आड़ा वक्त

## चुप्पी तोड़ो.....

वोट देने के लिए वह भीड़ में कबसे खड़ा है  
आस का सूरज नया निस्तेज आँखों में उगा है

देख ली उसने बदलकर आजतक कितनी हुकूमत  
अंततः विश्वास ने हर बार ही उसको ठगा है

लोग कहते देश बढ़ता जा रहा आगे निरंतर  
किंतु उसका भाग्य आखिर क्यों नहीं अब तक जगा है

गंध रोटी से अधिक अच्छी नहीं होती किसी की  
बात यह माँ को बताते घर में बच्चों से सुना है

डबडबाई आँख बेटी की उसे फिर याद आई  
धैर्य कैसे वह धरे जब खून अंदर खौलता है

सिर्फ जीने के लिए यह छद्म समझौता किया है  
ओढ़ ली उसने हँसी, पर हृदय पीड़ा से भरा है

जड़ दिया ताला जुबाँ पर चीखते थे घाव भीतर  
हो विवश वह इस तरह से रोज जीना सीखता है

याद सहसा आ गया तब बिन दवा माँ का गुजरना  
कर्ज कितना है लदा, सामान क्या-क्या बिक गया है

तेज थे बच्चे, मगर छूटी पढ़ाई बीच में ही  
ईंट के भट्ठे पे अब लड़का मजूरी कर रहा है

पेट भरता है भला कब सिर्फ नारों की बदौलत  
रोशनी की बात कर केवल अँधेरा ही दिया है

पीढ़ियाँ मर-खप गईं लेकिन हुई कम ना गरीबी  
कान में हरदम अभावों का ठहाका गूँजता है

बोझ वह आश्वासनों का ढो रहा कितने दिनों से  
यातना, अपमान, पीड़ा के सिवा कुछ कब मिला है

दुखभरा अनुभव बताता लोकशाही की हकीकत  
हैं जड़ें मजबूत, लेकिन खोखला उसका तना है

जब जिसे मौका मिला अपमान करने से न चूका  
खून उसके स्वप्न का हर श्वेत कपड़े पर लगा है

छल मिला उसको सभी से मतलबी निकली दिलासा  
आँसुओं को छोड़कर कोई नहीं उसका सगा है

जाति को भी देख ली उन्माद देखा धर्म का भी  
एक जैसा रूप शोषण का उसे सबमें दिखा है

वे कहाँ पहचानते साहब उसी की जाति के जो  
वह अछूतों की तरह उपहास उनका झेलता है

आज ठेकेदार कितने हैं बने शोषित-दलित के  
जी रहा वह किस तरह यह कौन उससे पूछता है

काटते हैं सब मलाई नाम लेकर निर्धनों का  
दर्द लेकिन कौन भूखे का भला महसूसता है

अब कहाँ जनशक्ति दिखती, जातियाँ केवल बची हैं  
कौन किस दल से बँधा, हर जाति पर ठप्पा लगा है

बाँटने के सिलसिले में जाति में उपजाति खोजी  
कौन अगड़ा कौन पिछड़ा युद्ध अब इस पर मचा है

अब गरीबी को बतानी पड़ रही है जाति अपनी  
धर्म शव का देखकर श्रद्धासुमन मिलने लगा है

जाति ही मुद्दा प्रमुख है गौण बातें और सारी  
देखकर यह सोच अंधी वह बहुत ही अनमना है

धर्म भी तो है दुखी अब हो रही उस पर सियासत  
कर रहा अपराध कोई मिल रही उसको सजा है

उठ रही अर्थी यहाँ सद्भाव की देखो जिधर भी  
चीखती है सभ्यता पर चीखना हमको मना है

भाषणों से हो रहा है खूब उत्पादन घृणा का  
प्रेम का अब क्षेत्रफल हर रोज ही कुछ घट रहा है

हो प्रगति सबकी यहाँ कोशिश नहीं ऐसी हुई क्यों  
बाँटकर सब मुफ्त जनमत को खरीदा जा रहा है

बढ़ रहा टकराव है विश्वास पर संकट भयंकर  
आदमी ही आदमी को देखकर अब डर रहा है

भ्रष्ट होने के लिए तो जोहते अवसर सभी हैं  
पाठ नैतिकता का अब केवल किताबों में बचा है

कोसने का है चलन हर बात पर सरकार को ही  
आदमी बाहर बड़ा, अंदर सिकुड़ता जा रहा है

नागरिक इस देश के परिचय नहीं है यह मुकम्मल  
जाति क्या है, धर्म क्या है, पूछते हैं राज्य क्या है

तंत्र यह कैसा कि शोषित खुद चुने शोषक स्वयं का  
नाम दे जम्हूरियत का यह तमाशा चल रहा है

सब मुखौटे हैं लगाए नम्रता के, शिष्टता के  
जानना मुश्किल कि विषधर कौन इनमें से बड़ा है

भिड़ गए तब तक वहाँ दो पार्टियों के कुछ समर्थक  
वे नहीं मानें पुलिसवाला मनाने में लगा है

हो रहा उद्देश्य पूरा चाहते नेता यही तो  
देख उनकी मूर्खता को वह दुखी झुँझला रहा है

खुद रखें रिश्ते मधुर हमको लड़ा देते परस्पर  
आज इस दल में दिखें कल दूसरे में सिलसिला है

साथ ही रहना हमें, मिलजुल रहें चाहे लड़ें हम  
गाँव ही पहुँचा लपककर जब कभी संकट पड़ा है

आदमी का मर्म केवल आदमी ही जान पाए  
दूसरे से बीस दिखने के लिए क्या-क्या किया है

कौन लड़ता है लड़ाई दूसरे के बल उछलकर  
वक्त पर सामर्थ्य अपना ही बढ़ाता होसला है

आज जो हैं सिर झुकाए कल वही फुफकार मारें  
भाव यह सम्मान का केवल चुनावों तक जगा है

दूध का इनमें धुला है कौन जिसको वह जिताए  
एक जैसे हैं सभी यह सोच आगे बढ़ रहा है

जा दबा देगा बटन उम्मीद में इस बार भी वह  
क्या पता विषहीन निकले साँप जिसको चुन रहा है।

उपेन्द्र कुमार मिश्र  
(उपेन्द्र कुमार मिश्र)

## स्मृतियों से संवाद

★ उपेन्द्र कुमार मिश्र



संपादक

ऐसा पहली बार हुआ कि वे कुछ नहीं बोलीं। जब भी मैं उनके पास जाता था तो इस उम्मीद के साथ जाता था कि देखते ही उनकी आँखों में खुशी चमकेगी, वे हँसती हुई पास आएँगी और आशीर्वाद के साथ - साथ हमेशा की तरह फिर स्नेहिल उलाहना देंगी - 'बहुत दिन बाद आए हो। आया करो !' और मैं उनके अपनत्व की वर्षा से भीगता चला जाऊँगा। लेकिन उस दिन ऐसा कुछ नहीं हुआ और न तो मैं उनके पास ऐसी कोई उम्मीद लेकर गया ही था। अब तो ऐसी उम्मीद की कोई गुंजाइश ही नहीं बची थी।

शायद, सुबह के लगभग छह बजे होंगे। नींद खुलते ही आदत के मुताबिक बगल में रखा अपना मोबाइल फोन उठाया था। स्विच ऑन किया और लेटे - लेटे ही उस पर नज़र दौड़ाने लगा था। तभी एक विशेष फोन नंबर से आया वॉट्सऐप मैसेज देखकर चौंका। उसे उत्सुकतावश खोला और पढ़ते ही जड़ हो गया। खबर ऐसे व्यक्ति ने दी थी कि उसके गलत होने का कोई सवाल ही नहीं था। लेकिन मैं चाहता था कि उसे कोई गलत कह दे, इसलिए चेतना लौटते ही तुरंत हरिशंकर राठी जी को फोन मिलाया। लेकिन होनी को टाल देने का सामर्थ्य उनके पास भी नहीं था। सत्य को स्वीकार करने में कुछ देर लगी। फिर भारी मन से हम निकल पड़े द्वारका के लिए। पहले वहाँ जाने के लिए जिन पैरों की आतुरता पर अंकुश लगाना पड़ता था, आज वे ही पैर उठाए नहीं उठ रहे थे। आखिर ऐसा क्या हो गया था ? सुबह इतनी उदासी ओढ़े हुए पहले कभी दिखाई नहीं दी थी। मेट्रो ट्रेन के भरे डिब्बे में हम गुमसुम खड़े थे। मन में नीरवता पसरी हुई थी। अपने को सामान्य करने की कोशिश में मैं लगा था। भावुकता को कुचलने के लिए कठोर विचारों को जबरदस्ती खींचकर मन में लाता रहा - मैं इतना दुःखी क्यों हो रहा हूँ ? कौन - सा सगा रिश्ता था उनसे मेरा ? सगा क्या, दूर - दूर तक भी तो कोई रिश्ता नहीं था। मतलब साधने वाला कोई संबंध भी नहीं था। ऐसे तो बहुत से लोगों से मिलता रहता हूँ ? सबसे तो ऐसा लगाव नहीं होता। दस - बारह बार ही तो मिला था उनसे। वे तो सबको देखकर खुश होती थीं। हँसकर स्वागत करती थीं। आशीष देती थीं। प्यार लुटाना तो उनका स्वभाव था। आज मेरे अलावा भी बिना रिश्ते - नाते वाले बहुत से लोग वहाँ आए होंगे। क्या वे भी मेरी ही तरह विचलित होंगे ? या फिर औपचारिकतावश आए होंगे ? इतने बड़े साहित्यकार की पत्नी थीं, शायद उनके आने का यही कारण हो। फिर मैं भी औपचारिक क्यों नहीं हो पा रहा हूँ ? इतनी समझ तो मुझे भी है, दुनिया में जो आया है वह एक

दिन जाएगा ही। कितनों को आते और जाते देख चुका हूँ। ऐसी मनःस्थिति से तो कभी नहीं गुजरा हूँ।

अचानक मन के भीतर से आवाज आई - किस औपचारिकता की बात कर रहे हो ? क्या उन्होंने तुम्हारे साथ कभी औपचारिकता निभाई थी ? वहाँ तो हर दिन साहित्यकारों का जमावड़ा लगा रहता था। बड़े - बड़े साहित्यकार

अभी तो सात - आठ महीने पहले की ही बात थी। मिश्र जी पर हम लोगों द्वारा संपादित एक किताब का विमोचन होना था। उस पुस्तक के प्रकाशक हरेंद्र तिवारी जी ने कहा था कि विमोचन के अवसर पर मुँह मीठा कराना चाहिए, इसलिए आपलोग साथ में मिठाई भी लेते आइएगा। विमोचन वाले दिन हमलोग बड़ी दुविधा में थे

खुश हुई थीं। पुस्तक के विमोचन से पहले वे वहाँ उपस्थित लोगों के लिए गदगद मन से चाय, नमकीन, बिस्किट आदि रखती चली जा रही थीं और हम उनके वात्सल्य को अपने हृदय में भरते जा रहे थे। लाख मना करने के बावजूद वे पकौड़ी भी बनाकर ले आई और फिर बोलीं - 'मेरे हाथ से बनाया हुआ हलवा खाकर देखो।' हम अवाक् थे। इस उम्र में भी इतनी फुर्ती? आतिथ्य - सत्कार का इतना ध्यान? नहीं - नहीं, उनके लिए अतिथि कोई नहीं था। सब अपने परिवार के ही थे। बार - बार हमारे निवेदन को अनसुना कर वे अंदर जातीं और बारी - बारी से सामान लाकर हमारे सामने मेज पर रखती जातीं। बीच - बीच में झिड़की भी देती थीं - 'क्यों नहीं खा रहे हो?' माँ की नजर में तो बच्चा हमेशा भूखा ही रहता है।

तभी पालम आ गया। हम मेट्रो स्टेशन से बाहर निकल ब्रह्मा अपार्टमेंट की ओर चल दिए थे। मन में एक अजीब ऊहापोह की स्थिति थी। जब हम वहाँ पहुँचे तो डॉ वेदमित्र शुक्ल और केशव मोहन पांडेय जी मिल गए। फ्लैट के बाहर शोकाकुल, गुमसुम, सिर झुकाए हुए। हम भी बिना कुछ बोले उनके बगल में जाकर खड़े हो गए थे। अंदर पैर रखने की जगह नहीं थी। हम चारों अगल - बगल अपरिचित - से मूर्तिवत खड़े थे। जैसे एक - दूसरे की उपस्थिति का किसी को भान ही न हो। कोई संवाद नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं। मानों, इनमें से कोई बोलना जानता ही न हो।

मौन की भी अपनी एक भाषा होती है। अदृश्य लिपि में लिखी गई वह भाषा संवेदनाओं द्वारा पढ़ी जाती

**मौन की भी अपनी एक भाषा होती है। अदृश्य लिपि में लिखी गई वह भाषा संवेदनाओं द्वारा पढ़ी जाती है। मौखिक भाषा की तुलना में वह अधिक प्रभावी और स्थायी छाप छोड़ने वाली होती है। शब्दों में बँधते ही अभिव्यक्ति की सीमा तय हो जाती है। लेकिन जिसकी कोई सीमा न हो, जो शब्दों की पकड़ से बाहर हो, उसे मौन रहकर ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। प्रेम या करुणा का आधिक्य व्यक्ति को निःशब्द कर देता है। उनसे पाए प्रेम की अनुभूति भी हमें निःशब्द करती रही थी और आज उनके न रहने का शोक भी हमें निःशब्द कर दिया था।**

मिलने के लिए आते थे। उनके सामने तुम कहाँ ठहरते थे? क्या थी तुम्हारी औकात? अगर औपचारिकता निभानी होती तो तुम पर ममता क्यों लुटातीं? तुम्हारे बारे में क्यों पूछतीं? उनमें स्वाभाविकता थी, औपचारिकता नहीं। शायद, औपचारिक होना वे जानती ही नहीं थीं। जो कहना होता था, कह देती थीं। जो करना होता था, उसे बिना किसी औपचारिकता के करती थीं। कोई छुपाव नहीं, कोई बनावटीपन नहीं। वे न दिखना चाहती थीं, न दिखाना। जैसा अंदर, वैसा बाहर। न वाणी में छल, न व्यवहार में। मेरी भावुकता गाढ़ी होती चली गई थी।

कि वहाँ मिठाई लेकर जाएँ या नहीं। बड़ा संकोच हो रहा था। वे लोग क्या सोचेंगे? कितना अटपटा लगेगा? वे हमें पुत्रवत् स्नेह देते रहे हैं। हमसे अहेतुक आत्मीयता रखते हैं। कभी - कभी तो लगता है कि जैसे हम उनके परिवार के ही सदस्य हों। आजतक तो हम वहाँ कभी कुछ लेकर गए नहीं, हमेशा वहाँ से कुछ लेकर आते ही रहे हैं। अगर कहीं उन्हें बुरा लग गया तो? अंत में हमारी हिम्मत नहीं पड़ी कि हम वहाँ मिठाई लेकर जाएँ।

उस दिन मिठाई लेकर न जाने के हमारे निर्णय ने हमें लज्जित होने से बचा लिया था। वे हमें देखकर बहुत



है। मौखिक भाषा की तुलना में वह अधिक प्रभावी और स्थायी छाप छोड़ने वाली होती है। शब्दों में बँधते ही अभिव्यक्ति की सीमा तय हो जाती है। लेकिन जिसकी कोई सीमा न हो, जो शब्दों की पकड़ से बाहर हो, उसे मौन रहकर ही अभिव्यक्त किया जा सकता है। प्रेम या करुणा का आधिक्य व्यक्ति को निःशब्द कर देता है। उनसे पाए प्रेम की अनुभूति भी हमें निःशब्द करती रही थी और आज उनके न रहने का शोक भी हमें निःशब्द कर दिया था।

तभी किसी ने अंदर जाने का इशारा किया। शायद वहाँ लोग पार्थिव शरीर पर फूल अर्पित कर श्रद्धांजलि दे रहे थे। हम अंदर गए। लेकिन आगे जाकर श्रद्धांजलि देने की हिम्मत न पड़ी। हम इसके लिए अभी भी मानसिक रूप से तैयार नहीं हो पाए थे। पीछे ही खड़े रहकर कफन में लिपटे उनके शरीर को देखते रहे। बीच - बीच में नजर रामदरश जी की ओर भी जाती। वे कुर्सी पर बैठे चिरनिद्रा में लेटी जीवनसंगिनी को एकटक निहार रहे थे। इस समय उनपर क्या गुजर रही होगी, यह सोच - सोचकर मैं भीतर ही भीतर सिहर रहा था। शायद ज्ञानी लोग स्थितिप्रज्ञ होना जानते हैं। मुझे नहीं मालूम। जुटाया गया उनका धैर्य बीच - बीच में काँपता प्रतीत हो रहा था। बगल के कमरे में गायत्री मंत्र का जाप मोबाइल फोन से कराया जा रहा था। रामदरश जी के इच्छानुसार उस फोन को इस कमरे में लाया गया ताकि गायत्रीमंत्र का जाप पार्थिव शरीर के पास हो सके। किसी ने प्रस्ताव रखा कि हमें खुद गायत्रीमंत्र का जाप करना चाहिए। रामदरश जी भी खड़े

हो गए और सबके साथ गायत्रीमंत्र पढ़ने लगे। सबको पता था कि वे धर्मभीरु नहीं हैं। अंधविश्वास और कर्मकांड के भी कभी समर्थक नहीं रहे हैं। लेकिन पत्नी की धार्मिक आस्था का वे सदैव सम्मान करते रहे। आज उनके द्वारा गायत्रीमंत्र का पढ़ा जाना इसी सम्मान को दिखा रहा था। वे जीवनपर्यंत जिसके सम्मान और अधिकार के लिए सचेष्ट रहे, आज उस जीवनसंगिनी के मरणोपरांत उनकी सद्गति और मंगल के लिए वे लोक परंपराओं और मान्यताओं को निभाने में अपने विश्वास को आड़े नहीं आने देना चाहते थे। उनके लिए सबसे बड़ा विश्वास तो उनकी पत्नी ही थी।

सरस्वती जी के सहयोग के बिना रामदरश जी शायद इतने विपुल साहित्य की रचना नहीं कर पाते। घर - गृहस्थी और पारिवारिक जिम्मेदारियों को पूरी तरह सँभाल कर वे रामदरश जी को साहित्य - सृजन के लिए अपनी ओर से पूरा समय देने की कोशिश करती रहीं। किन रूपों में किस तरह वे मिश्र जी की साहित्यिक यात्रा में सहयोग देती रहीं, इसे रामदरश जी के अलावा और कौन समझ सकता था? पत्नी के साथ - साथ वे उनकी साहित्यिक मित्र भी थीं। उनकी अधिकतर रचनाओं की प्रथम पाठिका और उन पर अपनी बेबाक राय व्यक्त करने वाली भी। आज ऐसे जीवनसाथी को अंतिम विदाई देनी थी और मिश्र जी इसके लिए साहस जुटाने में लगे थे। यह 'अंतिम विदाई' दुनिया की नजरोں में थी, लेकिन मिश्र जी के लिए उन्हें अंतिम रूप से विदा कर पाना संभव नहीं था। क्या व्यक्ति की उपस्थिति केवल शरीर रूप में ही होती

है? वे जानते थे कि शरीर के नष्ट हो जाने के बाद भी वे उनके व्यक्तित्व में उपस्थित रहेंगी, कृतित्व में उपस्थित रहेंगी, चित्त और चिंतन में भी उनकी उपस्थिति बनी रहेगी। क्या जिस मकान को उन्होंने अपनी उपस्थिति और प्रयास से घर बनाया था, उसके एक - एक वस्तु में उनकी मौजूदगी नहीं रहेगी? शरीर के न रहने पर इस उपस्थिति की अनुभूति और गहरी हो जाएगी। स्मृतियों की कचोट के रूप में वे सदैव अपनी मौजूदगी का एहसास कराती रहेंगी।

उनकी मृत देह को घर से बाहर निकाला जा रहा था। पता नहीं घर की देहरी को पता था कि नहीं कि वे अब लौटकर फिर कभी नहीं आएँगी। अपार्टमेंट के मुख्य द्वार ने भी उन्हें अंतिम विदाई दी और वे आगे बढ़ गई थीं इस मौन वेदना के साथ कि अब मुझे कौन रोकना चाहेगा? मंगलापुरी के शवदाह - गृह में एक चबूतरे पर अर्थी को रख दिया गया था। लोग उन्हें प्रणाम करके श्रद्धासुमन अर्पित कर रहे थे। बगल में बने बेंच पर रामदरश जी को बैठा दिया गया था। तभी स्मिता जी आई और उनके कंधे पर सिर रखकर सिसकने लगीं। अब उनके लिए दूसरा कंधा बचा भी कहाँ था? न जाने कहाँ से उस सौ वर्षीय बूढ़े कंधे में इतनी ताकत आ गई थी कि वह बेटी को यह भरोसा देने लगा था कि अभी तो मैं हूँ न! अपने अंतर - रुदन के प्रवाह को रोककर मिश्र जी बेटी के सिर पर हाथ रखकर उन्हें ढाँढ़स बँधाने की कोशिश कर रहे थे। माँ के न रहने पर बाप की बड़ी जिम्मेदारी का शायद उन्हें एहसास हो चला था।

पार्थिव शरीर को वहाँ से ले जाकर चिता पर रख दिया गया था। परंपरा के अनुसार लोग पाँच लकड़ियाँ चिता पर रख रहे थे। मैंने भी उनका अनुसरण किया था। वे इन सबसे बेखबर बनी रहीं। अगर कह पातीं तो जरूर कहतीं - 'यहाँ तक पहुँचाने के लिए आप लोगों का धन्यवाद ! अब आगे की यात्रा मैं अकेले ही तय करूँगी।' वे तो बोल नहीं सकती थीं, लेकिन जो बोल सकते थे, वे भी कहाँ बोल पा रहे थे? ओम निश्चल जी, जसवीर त्यागी जी, नरेश शांडिल्य जी सब इस तरह से चुप्पी लगाए थे, जैसे इन्हें बोलना आता ही न हो। वे इस तरह की चुप्पी की अभ्यस्त नहीं थीं। बिना लाग - लपेट बोलती थीं, खुलकर हँसती थीं, तमाम साहित्यकारों से जुड़े अपने अनुभव को बाँटती थीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, त्रिलोचन, नागार्जुन से लेकर वर्तमान के नए रचनाकारों तक के बारे में हमने उनसे बहुत कुछ जाना - समझा था। इन सबके बारे में अपने अनुभव से सृजित उनकी अपनी

धारणा थी। जिसे शायद हम साहित्य के माध्यम से नहीं जान सकते थे। उनकी टिप्पणियों में दुर्लभ ईमानदारी होती थी, जो विरले साहित्यकारों में ही देखने को मिलती है। एक साहित्यिक परिवेश में रहकर साहित्य को पढ़ने, सुनने, देखने और परखने की अद्भुत चेतना उनमें विकसित हो गई थी।

उस दिन वह सब चिता में धू - धू कर जल रहा था। कुछ देर के लिए हमारा रागी मन वैरागी हो गया था और हम परम ज्ञानी। एक दिन मिट्टी की देह मिट्टी में मिल जाएगी। खाली हाथ आना है और खाली हाथ ही जाना है। सारे रिश्ते - नाते यहीं धरे के धरे रह जाते हैं। शव को सामने पड़ा देखकर, शवयात्रा में जाते समय या श्मशान में पहुँचकर हर व्यक्ति के मन में कुछ ऐसे ही विचार आते हैं और लगता है कि अब वह इस नश्वर संसार की निस्सारता को अच्छी तरह समझ गया है, उसके मन के सारे कलुष धुल गए हैं। इसी अनुभूति के साथ हम भी वहाँ से बाहर निकले थे। मुझे याद है, रामदरश जी

अपने परिवार के साथ गेट पर हाथ जोड़े खड़े थे। उस दुःख की घड़ी में साथ देने वाले, वहाँ तक आने वाले लोगों के प्रति आभार व्यक्त कर रहे थे, उन्हें धन्यवाद दे रहे थे। उनकी यह विनम्रता मुझे थोड़ी असहज कर गई थी। उनके जितना तो नहीं, लेकिन खोया तो हमने भी था। जिनसे मातृवत् स्नेह मिलता रहा हो, उनका जाना सुनकर हम वहाँ न जाएँ, इतना कृतघ्न तो नहीं हो सकते थे। उन्होंने जीते जी कभी धन्यवाद या आभार व्यक्त कर हमें अपने परिवार से अलग होने का बोध नहीं होने दिया था। लेकिन वे अब नहीं थीं, फिर हम शिकायत भी किससे करते ?

अब जब कभी मैं द्वारका के ब्रह्मा अपार्टमेंट या वाणी विहार जाऊँगा तो उन्हें वहाँ न पाकर कैसा लगेगा ? क्या गुजरेगा मन पर ? वहाँ से लौटते समय अब प्रसन्नता नहीं, खालीपन लिए लौटूँगा। यह सोचता हूँ और हो जाता हूँ उदास।



गिरीश श्रीवास्तव

राह कंकरीली हो पथरीली हो चल देते हैं  
दृढ़ हो संकल्प अगर रुख को बदल देते हैं।  
जान जाने की तो परवाह नहीं करते कभी -  
बढ़ के दुश्मन के इरादे कुचल देते हैं।

सच का बस अपमान करते रह गए।  
झूठ का सम्मान करते रहे गए।  
विवशता - मजबूरियाँ जीना पड़ा -  
उम्र भर विषपान करते रह गए।

छाले पड़े हुए हैं खुशियों के पाँव में।  
दिन रात भटकता रहा सुधियों के गाँव में।  
ऐ जिन्दगी ठहर जरा - सा चैन लेने दे -  
मुझको छिपा ले अपनी पलकों की छाँव में।

सम्पर्क:

एडोवकेट कॉलोनी (जजेज कॉलोनी) मियाँपुर,  
जौनपुर, ७०२० २२२००२

## जुगाड़

★ रूपसिंह चन्देल



**जन्म :**

12 मार्च, 1951 (कानपुर)

**शिक्षा :** पीएचडी (हिन्दी)

**सृजन :**

लगभग 50 पुस्तकें प्रकाशित, जिनमें उपन्यास, कहानी संग्रह, बाल कहानी संग्रह, यात्रा संस्मरण, आलोचना आदि विधाएँ शामिल। (रूसी लेखक टॉस्तोएवस्की पर विशेष कार्य)

**पुरस्कार सम्मान :**

हिन्दी अकादमी दिल्ली सम्मान और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान साहित्य अन्य सम्मान।

**सम्पर्क**

फ्लैट नं.705, टॉवर-8, विपुल

गार्डेंस, धरुहेड़ा-123106

मो. नं.8059948233

समकालीन अभिव्यक्ति

“तुम हंसोगे और कहोगे कि इतनी मामूली-सी बात पर मैं इतना गंभीर हो गया। लेकिन बलवंत, बात मामूली-सी दिख भले ही रही है, उसके पीछे उद्देश्य बड़ा था। कोई उस व्यक्ति का नाम कैसे भूल सकता है, जिससे उसने दो माह पहले तक लगभग एक वर्ष से अधिक लगातार बात करता रहा हो, फोन पर, व्हाट्सअप पर वीडियो कॉलिंग और व्हाट्स चैट द्वारा? ऐसा भी नहीं कि उसे भूलने की बीमारी हो-होती तो बताती, जबकि साहित्य को लेकर उसने घंटों बातचीत की। उन्हीं-उन्हीं विषयों पर बार-बार बात की। यदि भूलने की बीमारी होती तब वह उसी विषय पर उन्हीं मुद्दों पर वैसे ही बात नहीं कर सकती थी, जैसे पहले किया था। बातचीत में कुछ बदलाव-भटकाव होता।”

“जगन, कुछ लोगों को नाम भूलने की बीमारी होती है। उदाहरण के लिए मुझे है। मैं किशोरावस्था के एक-दो छात्रों को छोड़कर सभी के नाम भूल चुका हूँ। यही नहीं, एक दिन मैं एक समकालीन कथाकार का नाम याद करता रहा, जिन मित्र से बात कर रहा था, उन्हें उसकी एक कहानी का नाम बताकर पूछा कि यह कहानी किसकी थी! फोन पर मित्र ने जोर का ठहाका लगाया और बोले, “यार बलवंत, तू उस आदमी का नाम भूल रहा है, जिसके साथ महीने-दो महीने में कॉफी हाउस में बैठा करता था।”

“बैठा करता था, लेकिन वह मेरा दोस्त नहीं था। वह कॉफी हाउस में विष्णु प्रभाकर जी की मेज पर बैठा होता। दूसरे भी होते...मेरा उससे इतना ही परिचय था।”

“एक बार तुम्हारी और उसकी कहानी एक साथ किसी पत्रिका में छपी थी और जिस कहानी का नाम लेकर तुम मुझसे उसका नाम पूछ रहे हो, वह वही कहानी थी। फिर भी उसका नाम भूल रहे हो।”

दोस्त ने फिर ठहाका लगाया।

“यार, उम्र के साथ याददाश्त कमजोर हो गयी है। तो मित्र जगन हो जाता है कई बार ऐसा।”

“लेकिन वह अभी पचास की भी नहीं।”

“जगन, तुम कुछ अधिक ही सोच रहे हो।” बलवंत बोला, “भूल जाओ। मान लो कि उसकी याददाश्त कमजोर है।”



“कैसे मान लूँ? उसने झूठ बोला और मैंने वह झूठ पकड़ा। उसे उसी समय बताया कि वह झूठ बोल रही है।”

“हो सकता है कि उसने जानकर ऐसा किया हो।” बलवंत ने हथियार डालते हुए कहा, “लेकिन मामला है क्या? तुमने केवल इतना ही बताया कि तुम्हारी उस परिचित लेखिका ने तुम्हारा नाम भ्रष्ट करके लिखा था।”

2

“बताता हूँ। पहले यह बता दूँ कि यदि यह गलती सरकारी दफ्तर में किसी वरिष्ठ अधिकारी के लिए किसी ने की होती तब उसे तुरंत निलंबित कर दिया जाता। लेकिन साहित्य में वरिष्ठों को वे लोग निलंबित नहीं, बल्कि खारिज करने की कोशिश में अपनी पूरी ऊर्जा खर्च कर रहे हैं, जिन्होंने दस कहानियाँ

या दस कविताएँ भी नहीं लिखीं। अधिक से अधिक एक कहानी या कविता संग्रह छपा होता है। नम्रता का अभी कोई कहानी संग्रह भी नहीं। ये लोग पढ़ते भी नहीं, केवल जुगाड़ करते हैं.....जुगाड़।

संग्रह छपने की योजना बनाते ही उसके लिए पुरस्कार पाने के जुगाड़। मेरे नाम को भ्रष्ट करने के पीछे की कहानी

भी यही है।”

“तुमने यह सब बताकर मेरी उत्सुकता बढ़ा दी।”

“यह बात पिछले साल की है, यानी अप्रैल 2022 की। उससे पहले जब भी मैं अपनी किसी नई आने वाली पुस्तक का कवर फेसबुक में प्रकाशित करता, वह टिप्पणी करती कि जल्दी ही वह मेरा उपन्यास या कहानी संग्रह प्रकाशक से मँगाकर पढ़ेगी। यह बात वह पिछले पांच-छह सालों से लिखती आ रही थी। एक बार मैंने फेसबुक में ही पूछा कि उसने अब तक मेरे कितने उपन्यास पढ़े, उसने उत्तर में लिखा, “सर, बहुत व्यस्तता रही। नहीं पढ़ पायी। बस जल्दी ही मैं ऑर्डर करूँगी।”

“होता है जगन, महिलाओं के पास समय का अभाव होता है। लेखन

के साथ उन्हें घर भी सँभालना होता है, कुछ नौकरी भी करती हैं।”

“मैंने बुरा नहीं माना। केवल जानना चाहा था कि यदि उसने पढ़ा है तो उपन्यास पर उसकी प्रतिक्रिया जानता। लेकिन बलवंत मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उसने नहीं के बराबर लेखकों को पढ़ा है। अपने समकालीनों को भी नहीं पढ़ा।”

“तुम्हें कैसे मालूम?”

“मैंने कुछ उपन्यासों और कहानियों के नाम लेकर पूछा। उसने उलट पूछ लिया, “सर, यह किसका उपन्यास या कहानी है?”

“होता है यार, तुम अपनी कहानी बताओ। मेरी उत्सुकता बढ़ती जा रही है।”

“एक दिन उसका फोन आया। बोली, “सर, मैंने धनबाद की सुशीला सत्यार्थी के साथ मिलकर दिव्यांग विमर्श पर दो खण्डों में कहानी संकलन सम्पादित करने की योजना बनायी है।”

“सुशीला सत्यार्थी कौन हैं?” मैंने पूछा। “सर, वह लेखिका नहीं हैं, लेकिन साहित्य में उनकी विशेष रुचि है। बहुत पढ़ती हैं, लेकिन किसी साहित्यकार से उनका परिचय नहीं है। फेसबुक में मेरी मित्र हैं। यह योजना उन्होंने मेरे सामने प्रस्तुत की, लेकिन वह मेरी कोई सहायता नहीं कर पाएँगी। लेखकों से कहानियाँ मुझे ही माँगनी हैं और प्रकाशक से भी मुझे ही बात करनी है।”

3

“ओह!”

“जी सर” एक क्षण रुककर उसने कहा, “दरअसल वह बुजुर्ग हैं, दिव्यांग है.....चल नहीं सकती। शायद

इसलिए.....। आपने भी दिव्यांगों पर कहानी लिखी है। मुझे आपकी कहानी चाहिए सर।”

“मैंने दो कहानियाँ लिखी थीं बहुत पहले। दोनों मेरे संग्रहों में प्रकाशित हैं।”

“सर, एक मुझे दें। आपकी एक कहानी काफी मार्मिक और चर्चित रही थी।”

“आपने पढ़ा है?”

“नहीं सर। मुझे नरेन्द्र सिंह जी ने बताया। किसी ने दो साल पहले शायद विकलांग केन्द्रित कहानी संकलन सम्पादित किया था। नरेन्द्र जी की कहानी भी उसमें थी। मेरे सम्पादित संग्रह में भी उनकी कहानी होगी। सर, निराश नहीं करोगे। आप जैसे वरिष्ठ लेखक की कहानी संकलन में जानी ही है और सर, एक बात और...।”

“क्या?”

“आपका इंटरव्यू भी जाना है दूसरे खण्ड में। उसी में आपकी कहानी होगी।” संकलन के दोनों ही खण्डों में पन्द्रह-पन्द्रह लेखक होंगे। पहले खण्ड में नवीन 'अखण्ड' की कहानी और उनका साक्षात्कार होगा।”

“सोचूँगा।”

“सर, सोचें नहीं। आपके बिना संकलन नहीं छपेगा।”

“ओह!” कुछ रुककर मैं बोला,

“कहानी दे दूँगा, लेकिन साक्षात्कार के बारे में सोचूँगा।”

“सर, वह भी आवश्यक है। मैंने योजना बनाते समय ही सोच लिया था कि नवीन 'अखण्ड' जी और आपके साक्षात्कार ही लेने हैं। अखण्ड जी से मेरी बात हो चुकी है। आप मना नहीं करेंगे सर!” उसके स्वर से विनम्रता टपक रही थी।

“मैंने हाँ कह दिया और दूसरे दिन ही कहानी उसे मेल कर दी। लगभग एक माह बाद उसका फिर फोन आया। लंबी बात की उसने। बातों में शहद घुला हुआ था। बोली, “सर, आपकी कहानियों और उपन्यासों पर बहुत लोगों ने लिखा है।”

“लिखा है, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हैं।”

“सर, तीन-चार कहानी संग्रहों और कुछ उपन्यासों की एक-दो समीक्षाएँ मुझे मेल कर देंगे।”

“क्यों?”

“झूठ नहीं बोलूँगी सर। अभी तक न आपके उपन्यास पढ़ पायी और न ही कोई कहानी संग्रह....

प्रकाशक.....।”

4

“हाँ, प्रकाशक ने आपके फोन अटेंड नहीं किए थे या आपसे आर्डर लेकर भी पुस्तकें भेजी नहीं। यही न!”

“जी सर, आपने सही कहा।”

एक क्षण रुककर वह बोली, “आपको कैसे मालूम सर?”

“आपने बताया था।”

वह चुप रही देर तक फिर बोली,

“सर, उन समीक्षाओं के बल पर प्रश्न बना लूँगी।”

“आप जनरल प्रश्न पूछें और बेहतर होगा कि दिव्यांगों से संबन्धित पूछें। आप ऐसी ही कहानियों का सम्पादन कर रही हैं न!।”

“आपने सही सुझाव दिया सर!”

“संग्रह छपने के लिए किसे दे रही हैं?” मैंने पूछा।

“तीन प्रकाशकों से बात चल रही है। दो प्रकाशक संग्रह की पचीस-पचीस प्रतियाँ दे रहे हैं।”

“यह तो बहुत उत्साहवर्धक सूचना है। कोविड के बाद जब प्रकाशन की दुनिया में बड़ा परिवर्तन हुआ है, तब प्रकाशक आपको इतनी प्रतियाँ दे रहे हैं। तुरंत किसी को छपने को दे दें।”

“लेकिन सर, वे छोटे प्रकाशक हैं। मैं दिल्ली के एक और प्रकाशक से चर्चा कर रही हूँ। वह स्थापित प्रकाशक है।” मैंने नाम पूछा। उसने टालते हुए कहा कि बात फाइनल होने के बाद बताएगी। बात आयी गयी हो गयी। मैं यह भूल ही गया था कि उसे कहानी और साक्षात्कार दिया था। छह महीने बीत गए। अचानक एक दिन व्हाट्स ऐप में एक गुप दिखाई दिया। देखा कि वह नम्रता का था। गुप का संदेश मेरे पास आया, तब तक नम्रता ने उसमें केवल बारह लेखकों को जोड़ा था। उसमें उसने अठारह लेखकों की सूची डालते हुए लिखा था, “शीघ्र प्रकाश्य दिव्यांग विमर्श की कहानियों का संग्रह।”

मैंने सूची देखी। उसमें 'अखण्ड'

जी की कहानी सबसे पहली थी। सोचा कि संकलन का यह पहला खण्ड होगा। एक नाम को छोड़कर सभी नाम परिचित थे। मैंने नम्रता को फोन करके बधाई दी और उस अपरिचित लेखक के बारे में पूछा, “जगन चन्द अहिरवार कौन हैं। कभी इन्हें पढ़ा नहीं।”

“सर, आपका ही नाम है।”

“मेरा नाम?”

“सर, टंकण की त्रुटि है। अभी ठीक कर देती हूँ सर।”

“उसने ठीक किया और इस बार जगन सिंह अहिरवार लिखा। मैंने फिर फोन किया, “नम्रता जी, मैं परिहार हूँ। दोबारा अहिरवार क्यों लिखा?”

“सारी सर।” उसके स्वर में काइयांपन था।

5

उसने नाम ठीक कर दिया। तभी मेरे दिमाग में विचार कौंधा कि उसने हर खण्ड में पन्द्रह लेखक कहे थे जबकि सूची में अठारह नाम हैं। इसका अर्थ है कि प्रकाशक के सुझाव पर एक ही संकलन प्रकाशित करवा रही है।

“संभव है कि टाइपिंग में नाम की गलती हुई हो।” बलवंत बोले। अबतक वह धैर्यपूर्वक बात सुन रहे थे।

“नहीं, मेरे नाम को सोद्देश्य भ्रष्ट किया गया था। इस संकलन में एक का ही इंटरव्यू जा सकता था। उसने नवीन ‘अखण्ड’ का देना चाहा होगा, क्योंकि वह कई पुरस्कार समितियों में हैं। तुम जानते हो कि मैं किसी समिति में नहीं हूँ। उसने मेरा नाम इसलिए भ्रष्ट करके लिखा कि नजर पड़ते ही मैं भड़क जाऊँगा और अपनी कहानी संकलन में न छापने के लिए कहूँगा। यह उसने स्वयं सोचकर किया या किसी के कहने पर, लेकिन मुझसे मुक्ति पाने का यह एक शातिराना ढंग था। साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।”

“ओह! यह बात थी। तुम सही कह रहे हो जगन। लोग कितना गिर सकते हैं...कैसे-कैसे जुगाड़...। मुझे भी उससे सतर्क रहना चाहिए।” बलवंत के स्वर में चिन्ता थी।



## अंदाज़ - ए - बयाँ

जहाँ रहेगा वहाँ रोशनी लुटाएगा,  
किसी चराग का अपना मकाँ नहीं होता।

- वसीम बरेलवी

हो गया हूँ मैं किसलिए ज़ख्मी,  
हादसा तो अभी हुआ ही नहीं।

- ‘अली’ अहमद जलीली

सूलियों से गुज़रना पड़ा,  
हमको किस्तों में मरना पड़ा।

- ‘नूसरत’ ग्वालियरी

दिन ही जब है इतना धुंधला,  
रात का चेहरा कैसा होगा।

- जगजीवन लाल अस्थाना

उजाला पौ फटे से काम पर है,  
अँधेरा चैन से सोया हुआ है।

- ‘अंजुम’ लुधियानवी

जाने क्या कुछ सुनकर लौटा,  
चुप है वो जबसे घर लौटा।

- अनिल ‘अभिषेक’

अब नहीं लौट के आने वाला,  
घर खुला छोड़ के जाने वाला।

- अरुन्तर वज्मी

कितनों ही के सर से साया जाता है,  
जब एक पीपल काट गिराया जाता है।

- ज़फ़र गोरखपुरी

संकलन: मीनू गेरा

द्वारा श्रीमती अलका गोस्वामी, शगुन ब्यूटी पार्लर, पुरानी  
पीएनबी वाली गली, कटरा नदबई, भरतपुर (राज.)



# शिवानी के भीतर का शिव

★ सुषमा गजापुरे



## जन्मतिथि

07 मई, 1965

## जन्मस्थान

कामठी कोलमाइन्स, नागपूर  
प्रकाशन

1. दर्द पराए का, 2. मन के आँगन में, 3. सृजन  
निरंतर, 4. गुप्तगू खयालों से, 6. ठीक-ठीक  
याद नहीं, 7. प्यार में, 8. कहाँ गए वो लोग  
(शोधालेख आधारित पुस्तक)

## सम्मान

1. विद्या वाचस्पति एवं विद्यासागर उपाधि  
'विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ' भागलपुर,  
2. हिन्दीतर हिन्दी भाषी सेवी सम्मान 'मध्य प्रदेश  
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' भोपाल, 3. 'रामेश्वर गुरु  
पुरस्कार' उत्कृष्ट हिन्दी साहित्यिक पत्रिका हेतु,  
सप्रे संग्रहालय द्वारा, 4. भारती भूषण, 5. भारती  
रत्न, 6. श्री गीत रश्मि, 7. रत्न भारती, 8. सृजन  
श्री सम्मान आदि अन्य पुरस्कार।

## सम्पर्क:

डॉ. बी-502, जुबिली पार्क,  
आदित्य गार्डन सिटी के पास,  
वारजे, 411058 पुणे (महाराष्ट्र)  
मोबाइल - 7999030457, 7715875500  
ई मेल - poojasushma443@gmail.com

# शि

शिवानी यह नाम मस्तिष्क में आते ही हमारे आसपास बिखरी हुई घटनाएँ, उनके पात्र और इन तानों-बानों से बुनी हुई कथाएँ, कहानियाँ और उपन्यास अनायास ही स्मरण हो उठते हैं। इन्हें पढ़ते हुए कभी लगा ही नहीं कि मैं शिवानी से मिली ही नहीं...जी हाँ, हर बार लगा शिवानी मेरे आसपास ही तो थी। शिवानी की हर कथा/कहानी का पात्र मुझे हर पड़ाव पर शिवानी से मिलवाता रहा...संवाद करता रहा और इसी पठन-प्रवास में मिल गयी मुझे कई बार गौरा पंत। अपने जीवन प्रवास में भिन्न-भिन्न पड़ावों पर, भिन्न-भिन्न घटनाओं एवं उनसे जुड़े हुए भिन्न-भिन्न पात्रों को अपनी कहानी के माध्यम से जीवंत करने की अद्भुत क्षमता शिवानी में थी, इसलिए शिवानी से परोक्ष रूप में ही सही, किन्तु मेरा मिलना तो तय था। कदाचित् उनकी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से शिवानी को जानना अधिक आसान था, क्योंकि शिवानी अपनी प्रत्येक कहानी में उपस्थित थी ही न। उनकी हर कहानी पाठक को अपनी या अपने आस-पास की कहानी लगती है, इसलिए मेरी तरह ही अन्य पाठकों का भी शिवानी से मिलना तय था।

मुझे शिवानी के भीतर की गौरा पंत में ही जीवन की सार्थकता दिखाई दी। उन्नत विचारों से युक्त पिता श्री अश्विनी कुमार पाण्डे की पुत्री भला अपने पिता के विचारों से कैसे अछूती रह सकती थी? गौरा अपने पिता की लाइली पुत्री थी। पिता से ही उन्होंने लेखन की कलात्मकता को अपनाया। शिवानी को जानने के लिए उनकी आत्मकथा 'सुनहु तात यह अकथ कहानी' पढ़ना आवश्यक है।

तुलसीदास की चौपाई "सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनत न जाय बरवानी।।" से तात्पर्य रखती शिवानी जी ने अपने सुदीर्घ जीवन के अनुभवों को आत्मकथा के रूप में ढाला है, जिसे शीर्षक दिया है - 'सुनहु तात यह अकथ कहानी....'। वह इसमें बड़ी ईमानदारी से लिखती हैं - 'मेरी यह दृढ़ धारणा है कि कोई भी व्यक्ति, भले ही वह अपने अन्तर्मन के लौह कपाट बड़े औदार्य से खोल अपनी आत्मकथा लिखने में पूरी ईमानदारी उड़ेल दे, एक-न-एक ऐसा कक्ष अपने लिए बचा ही लेता है, जिसकी चिलमन को उठा ताँक-झाँक करने की धृष्टता कोई न कर सके'।

भरे-पूरे परिवार में जन्मी शिवानी ने परिवार में बदलते संबंधों को देखा तो पारिवारिक रिवाजों की सशक्त श्रृंखला को भी जिया। बदलते हुए रिश्तों की वेदना का अनुभव शिवानी ने भोगा था और उसी वेदना से उपजी उनकी भावनाएँ प्रत्येक कहानी में अनायास ही दृष्टिगत होती हैं। वे कहती हैं - 'जिनके दौर्बल्य

को बहुत निकट से देखा है, जिनके सहसा बदल गए व्यवहार ने जीवन के अन्तिम पड़ाव में कई बार आहत किया है, उनके विषय में कुछ लिखने का अर्थ ही है रिसते घावों को कुरेद स्वयं दुखी होना।’

पाठक जब उनकी कथाएँ बाँचता है तो कई बार किसी घटनाक्रम पर आकर वह रुक जाता है, अचंभित हो जाता है। उसके मन में कई प्रश्न कुल्लुँचे मारते हैं कि इस लेखन का धरातल आखिर है क्या? कैसे लिख पाई शिवानी इस कथानक को? शिवानी अपनी कलम की शक्ति का रहस्य बताते हुए लिखती हैं - “मैंने इस दुदीर्घ जीवन में क्षणिक जय-पराजय का स्वाद भी चखा है। निर्लज्जता, मिथ्याचारिता का रहस्य भी कुछ-कुछ समझने लगी हूँ। इसी क्षुद्रता, मिथ्याचारिता के प्रतिरोध का उद्दाम संकल्प मुझे एक नित्य नवीन प्राणदायिनी शक्ति भी प्रदान कर जाता है। न अब मुझे किसी आत्मघाती मूढ़ता का भय रह गया है, न सत्य को उजागर करने में संकोच।” अपने चिंतन को आगे बढ़ाते हुए वह कहती हैं - “अहिंसा और मैत्री के सिद्धांत आज हम भले ही भूल गए हों, भले ही किसी विराट परिकल्पना के पीछे भागना हमारे लिए स्वप्नवत बन गया हो, हमारे संस्कार अभी पूर्णतया विलुप्त नहीं हुए हैं। प्रत्येक गृहस्थी को सुखी बनाने के लिए गृह के एक-न-एक सदस्य को त्याग करना ही पड़ता है, ऐसा त्याग जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी विराट वटवृक्ष की उदार छाया की भाँति, नवीन पीढ़ी का पथ शीतल करता रहे, उसे अपनी शीतल बयार का प्रकाश

अपनी शाखा-प्रशाखाओं से झर-झरकर झरता प्रकाश देता रहे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय वर्तमान समाज अपना स्वाधीन चिंतन बहुत पहले खो चुका है।” उनकी इन पंक्तियों में ही जीवन के संघर्षों और मार्मिक वेदना का ताप निहित है। उन्होंने जो भोगा, जो जिया, उसे ही पारदर्शिता के साथ लिखा।

शिवानी जी आडम्बर से परहेज करती हैं। दिखावा उन्हें बिल्कुल भी रास नहीं आता, इसलिए उनके मन की पीड़ा इन शब्दों में निकलती है - “जहाँ आडम्बर होता है, दिखावा होता है, वहीं फिर त्योहारों का निर्वाह भी एक अनचाही विवशता बन उठता है। आज की दीवाली देखती हूँ तो कहने में भी संकोच होता है कि हमारा देश दरिद्र है। आज लोग त्योहारों पर उपहार भेजने वालों के हृदय की गरिमा को नहीं तौलते, वे उपहारों की गरिमा तौलना सीख गए हैं। बाह्य आडम्बर जितना ही बढ़ता जा रहा है, उतना ही हृदय सिमटकर, सिकुड़कर छोटा होता जा रहा है।”

बाल्यकाल में परिवार की बाल-विधवा स्त्रियों की दयनीय अवस्था को देखकर ही कई कहानियों में विषम बाल-विधवा पात्रों ने जन्म लिया है। एक जगह वह अपनी एक बाल-विधवा बुआ के बारे में बहुत रोचक घटना लिखती हैं - “यह बुआ, अल्पना देने में पारंगत थीं, पर सबसे मोहक थी उनकी हँसी, सिर पीछे कर आँखें मूँद ऐसा ठहाका लगातीं कि अम्मी कभी उनको टोक भी देती - “धीरे हँसो अम्मा लली, तुम्हारी यह रावण की-सी हँसी मर्दों की बैठक तक चली जाएगी तो

अन्धेर हो जाएगा।” पर बुआ थीं कि हमारे गृह के सारे अदब-कायदों को ताक पर धर पूर्ववत् ठहाके मारती रहतीं। मुझे उनकी यह मुद्रा बहुत प्रिय थी। कोई तो है इस घर में जो घर के मर्दों के अनुशासन की धज्जियाँ उड़ाने में समर्थ है।”

अतीत का सिंहावलोकन करते हुए वो आगे लिखती हैं, “वह अतीत, जहाँ विलासिता में भी अभिजात्य का स्पर्श था। मेरा बचपन, कैशोर्य रियासतों में बीता है और इतना दावे के साथ कह सकती हूँ कि वे राजा आज के नए-नए बने नृपतियों से कहीं अधिक उदार थे, कहीं अधिक सहृदय।”

“मेरे पिता के शिष्य जसदण के आलाखाचर ने अन्त तक मेरी माँ को पेंशन दी, ओरछा महाराज बीरसिंह जू देव को मेरे पिता ने कभी गायत्री मंत्र दिया था। पिता की मृत्यु हुई तो उन्होंने बड़े सम्मान से हमें बुला भेजा, मेरे भाई को अपना सेक्रेटरी बनाया, मेरा कन्यादान किया, हमें वे ही सुविधाएँ दीं, जो हमारे पिता को प्राप्त थीं। शायद यही कारण है कि अभी भी बुन्देलखंड मुझे अपना मायका ही लगता है। यह जन्मजात रईसी, तब सर्वत्र एक-सी थी।”

कुमायूँ की एक-एक स्मृति उनके लेखन में उतर आती है, समय के बड़े-बड़े दालान पार करते हुए। कुमायूँ उनके भीतर जीता था और वह कुमायूँ के भीतर, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। कुमायूँ सभ्यता से वे बहुत अधिक आकर्षित थीं। बचपन से ही शिवानी के भीतर कुमायूँ अंकुरित हुआ, पल्लवित हुआ और जवान हुआ।

कुमायूँ की पुरुषों की विशेषता



बताते हुए वे कहती हैं - “पति अधिकांश कुमायूनी पुरुषों की भाँति अकर्मण्य, आलसी और बेकार - ‘निगरगंड मोटा, नफा न टोटा’ को सार्थक करते हैं, जीवनभर पराश्रयी हो कभी किसी रिश्तेदार के यहाँ मुफ्त की रोटियाँ तोड़ते, कभी किसी के यहाँ दिनों तक अवाञ्छित अतिथि बने रहते।”

अपने लेखन के बारे में वह लिखती हैं - “लेखनी वही सार्थक है, जो जीवन की जटिलताओं को स्वचक्षुओं से देखा, स्तुति निन्दा के भय से मुक्त हो, सत्य को लिपिबद्ध कर सके। उसका यह प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।” यह कहकर वह उन लेखकों के मुँह को बंद कर देती हैं, जो केवल आलोचना करने के लिए लिखते हैं और जीवन को जस का तस सामने रखने में हिचकिचाते हैं। लेखक को सदैव पारदर्शी होना चाहिए, ऐसा शिवानी का मत था।

शिवानी सफल कहानी के मापदंड के बारे में लिखती हैं - “माता से, सुनी कहानियों में ‘झुमकानी चोरी’ (झुमके की चोरी) हमारी प्रिय कहानी थी। न जाने कितनी बार सुनी, फिर भी कभी बासी नहीं लगी। और यही मेरे लिए आज भी एक सफल कहानी का सही मापदंड है, जो कई बार पढ़ी-सुनी जाने पर भी वही आनन्द दे, जो पहली बार पढ़ने-सुनने पर दे गई थी।”

इस पुस्तक में शिवानी जी बार-बार पहाड़ों और कुमायूँ की पहाड़-सी स्मृतियों में खो जाती हैं। शिवानी जी पहाड़ों की होली को याद करते हुए उनमें खो जाती हैं और लिखती हैं कि - “पहाड़ की होली का तब अपना ही जादू था। आमल की एकादशी से होली की

बैठकें लगतीं। मोट के दन (कालीन), उन पर बिछती दुग्ध-धवल चादरे, सफेद गिलाफ चढ़ा गावतकिया, उनका सहारा लिए लखनऊ की अम्बरी तम्बाकू की सुगन्धित धूम्र-रेखा से हुक्के का कश खींचते प्रतिष्ठित व्यक्ति। थोड़ी ही देर में थाल के थाल जम्बू हुँके आलू और गोझे परिवेशित होते, पीतल के चमचमाते गिलासों में मसाले डली अदरक की चाय। फिर आरम्भ होती बैठक होली।

अपनों बीरन मोहे दे री ननदिया,  
मैं होली खेलन जाऊँ वृन्दावन।  
या  
जाय पड़ूँ पी के अंक  
चाहे कलंक लगैरौ...

स्त्रियों का प्रवेश उस होली बैठक में निषिद्ध था। उनकी बैठकें अलग ही जमतीं। बहुत तड़के अबीर-गुलाल बिखेरती उन रंगीले होल्यारों की टोली के उस दिन सौ खून माफ करते। उनके गाने की प्रथम पंक्ति में मोहल्ले की प्रत्येक किशोरी का नाम गुँथा रहता। यद्यपि अन्य प्रदेशों की तुलना में पहाड़ की होली तब भी मर्यादामंडित रहती थी, किन्तु एक यही दिन तो है, जिस दिन भारतीय मनुष्य का रुग्ण मन, मनचाही कुलाटें ले अपने विकारग्रस्त चित्त को स्वयं तरोताजा कर लेता है।’

शिवानी जी संयुक्त परिवार में रहीं हैं, इसलिए उन्होंने बड़ी बारीकी से पारिवारिक संबंध और सामंजस्य को समझा है और जाना है। पारिवारिक तालमेल और संतुलन की छाप उनके हृदय में बहुत गहरे पड़ चुकी थी, जिसका प्रभाव उनकी सामाजिक कहानियों में झलकता है। वे अपने भरे-पूरे परिवारों की स्मृतियों में कुछ

हास्यास्पद घटनाओं का वर्णन करना भी नहीं भूलतीं। वे लिखती हैं - “नित्य कितने लोग उसके अटाले में खा रहे हैं, उन परिवारों में यह कभी-कभी गृहस्वामी को भी पता नहीं रहता था। भयंकर रूप से क्षुधा-कातर हमारे गाँव के असामी में से एक-न-एक तो हमारे यहाँ बना ही रहता। रोटियों का अंबार देखते-ही-देखते चट्ट, ऊपर से भात का स्तूपाकार पर्वत खा-पीकर गगनभेदी डकारों से दिशाएँ प्रकपित कर हमारे वे अनजाने अतिथि दिनभर के लिए हमारे आँगन में ही पसर जाते। पितृपक्ष की आगमनी में पूरे गृह का वातावरण ही बदल जाता। आज पितामही का श्राद्ध है, आज ताऊ का। पुरोहित जी को न्यौतने हमें ही भेजा जाता, उनके नखरे भी क्या कुछ कम रहते हैं?” यह थी उनके व्यंग्य की पैनी धार।

जीवन की सत्यता के दोनों पक्ष - जन्म और मृत्यु उस समय शिवानी जी के लिए आकर्षण का केन्द्र हुआ करते थे। उस समय संचार के साधन सीमित थे अथवा थे ही नहीं। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है, “उस सरल आडम्बरहीन जीवन में तब हमारे लिए दो मुख्य आकर्षण थे। एक जब हमारे घर के सामने की सड़क से किसी की बरात निकलती और दूसरा जब हमारे पिछवाड़े की सड़क से किसी की अर्थी निकलती। अल्मोड़ा के एकमात्र श्मशानघाट के लिए तब वही एकमात्र सड़क थी। गैस के लैंप लिए शवयात्री जोर-जोर से ‘राम नाम सत्य है, सत्य बोलो, सत्य है’ कहकर निकलते तो हम एक-दूसरे को धकेलते मुँडरे पर चढ़ जाते।” मृत्यु भी उस समय आकर्षण का केंद्र हुआ

करती थी, क्योंकि अन्य कुछ और तो था ही नहीं दिल बहलाने को। शिवानी ने जन्म से मरण तक का मेला देखा। तब ही से जान लिया था कि जीवन का सत्य तो यही था।

शिवानी जी ने अपने जीवन में सुख-दुख के लंबे अनुभवों से, अपनी ही संवेदनाओं से वार्तालाप किया है। इसलिए उनके लेखन में जीवन के सभी रसों का प्रभाव देखा जा सकता है। उन्हें गुरुदेव की पंक्तियाँ स्मृत हो जाती हैं- ‘आज अपने दीर्घ जीवन का लेखा-जोखा बटोरने लगती हूँ तो गुरुदेव की ही अपने मित्र को लिखी एक पंक्ति याद हो आती है- दीर्घ जीवन एकटा दीर्घ अभिशाप, (दीर्घ जीवन एक दीर्घ अभिशाप है), किन्तु दुख-सुख की यही पींगे हमें अधिक सहिष्णु, अधिक संवेदनशील बना देती हैं। वसुन्धरा के प्रति हमारा मोह स्वयं कम होता जाता है। हम जब रामपुर में थे तो कभी-कभी दो बड़े तेजस्वी चेहरे वाले फकीर बड़े ही मधुर स्वर में दो ही पंक्तियाँ गाते थे -

सब ठाठ पड़ा रह जाएगा

जब लाद चलेगा बंजारा।

एक माँ के रूप में शिवानी अपनी पुत्रियों के लिए मात्र माँ ही नहीं, एक प्रगाढ़ मित्र एवं गुरु भी थीं। शिवानी जी अपनी बेटियों के कन्यादान को स्मरण करते हुए लिखती हैं- “अभी उनतीस वर्ष पूर्व किए गए अपनी पुत्रियों के कन्यादान का स्मरण हो जाता है, तो उस कठिन कवायद की एक-एक मुद्रा सहमा जाती है। कैसे कर पाई थी मैं वह सब, जब पुत्री के विदा होते ही कटे पेड़-सी पस्त पड़ गई थी। दिनों तक गला बैठा रहा, पैरों में ऐसी बिवाइयाँ

पड़ गई कि धरा पर पैर धरना कठिन हो गया था। उस पर अतिथियों के दुहेजू की बीबी से नखरे। पहले उनकी आवभगत और फिर विवाद, उनकी असन्तुष्ट टीका-टिप्पणी। यदि कहीं भी सामान्य-सी त्रुटि रह जाती तो दिनों तक, शहर की अली-गलियों में बखान होता रहता, ‘नाम के ही बड़े हैं, दर्शन के छोटे। इसे बड़े घर में रिश्ता हुआ, पर नीयत देखी तुमने कारवी? एकदम झंत्योल (बहुत साधारण) शादियाँ की हैं। माँ तो बस कहानी-उपन्यास लिखने में ही उस्ताद है, पर कौन बोले बाबा, कहीं सुन लिया तो अपनी कलम से हमारा ही गला रेत देगी।’ पीठ पीछे की गयी इस तरह की बातों से भी शिवानी आहत हो जाती थीं, किन्तु धैर्य और सौम्यता उनके स्वभाव में थी।

कुख्यात डाकू सुखदेव का शिवानी जी से संवाद बेहद रोचक एवं मर्मस्पर्शी है- गोमती से संलग्न लखनऊ से एक बीहड़ रास्ता पिपराघाट को जाता है। एक दिन मार्ग भटक मैं उसी रास्ते पर घूमने निकल गई। उस दिन वहीं मुझे कुख्यात डाकू सुखदेव मिला था। वह मुझे अपनी ही कुख्यात बिरादरी के प्रति सतर्क कर रहा है, “बहू जी, ई सड़क बहुत खतरनाक है, अकेली मत निकला करो, फिर सोना पहने हो।”

उसी ने कहा था- “बहुत नी लिखत हो बहू जी, कभी हमारी जिनगी पर भी कुछ लिख डालो”, मेरा माथा ठनका। उसका अनुरोध पूरा तो किया, किन्तु जब तक मेरी कहानी ‘पथ-प्रदर्शक’ छपी, वह पुलिस की मुठभेड़ में फँस, अनन्त पथ का पथगामी बन चुका था। तब ही मुझे पता लगा

कि वह और कोई नहीं स्वयं सुखदेव डाकू ही था।

अपनी जन्मभूमि को छोड़कर जाने का दुःख शिवानी जी ने बड़ी कातरता से व्यक्त किया है। वे अल्मोड़ा से सौराष्ट्र आ गयी थीं और वे राजकोट में पूरे 14 वर्ष रही थीं। शिवानी जी ने अपनी बहनों एवं भाइयों का वर्णन बेहद भावुक होकर किया है। उन्हें अपने भाई-बहनों से बेहद लगाव था। वैसे तो शिवानी जी अपनी सभी सगे संबंधी, परिचितों, सहेलियों, नौकरों आदि सभी के समीप थीं, इसलिए उनकी संवेदनाएँ उन सभी के लिए चैतन्य थी, वह हर किसी से दिल से जुड़ती थीं और दिल से निभाती भी थीं। उन्होंने अपनी आत्मकथा में बहुत ही मन से, तन्मयता से उन सबके बारे में लिखा है।

शेषाद्रिपुरम् के नए बंगलों की छटा शिवानी की स्मृतियों में सदैव ताजा रही। वहाँ पहुँचकर वे अपने अतीत को स्मरण करती हैं। उन्हें बंगलूर की अलहड़ जवानी भी याद आती है। मसखरी वाली घटना का शिवानी जी जिक्र करना नहीं भूलतीं- “एक बार मसखरे त्रिभुवन, जिन्हें हम त्रिभी कहकर पुकारते थे, साड़ी पहन, बेला का गजरा लगा, किसी पुरानी फिल्म नायिका का अभिनय कर रहे थे और हम हँसते-हँसते दुहरे हुए जा रहे थे। नक्की स्वर व लटके-झटके के साथ हमारे रसोइया देवीदत्त जी के पैरों में लिपट गए। ‘प्राणनाथ, मैं तो आपकी जन्म-जन्मांतर की दासी हूँ, पद-प्रहार भी करेंगे तो भी नहीं छोड़ूंगी। देवीदत्त जी थियेटर जोश में आ गए, ‘तब ले खा मेरी लात।’ कह उन्होंने कसकर लात क्या मारी कि जलजला



आ गया। दोनों हाथों से साड़ी का लंगोट बना क्षणभर पूर्व की अपनी स्त्रियोचित क्रीड़ा भुला त्रिभुवन उन्हें मारने भागे। आगे-आगे देवीदत्त जी, पीछे-पीछे त्रिभुवन।”

शिवानी जी को पहाड़ी भाषा सिखाने राजुला आया करती थी। वह एक पेशेवर गायिका हुड़क्याणी थी। उसके साथ बिताये हुए समय का एवं राजुला के जीवन की घटनाओं का शिवानी जी के मन पर काफी प्रभाव पड़ा था। उपन्यास ‘करिए छिमा’ राजुला के जीवन पर ही आधारित है। राजुला के सभी मानवीय पक्षों पर शिवानी जी ने अपनी कलम से प्रकाश डाला है। वे लिखती हैं- “एक बात और भी है इसे पुरुष लेखक मानें या न मानें, नारी की कलम ही नारी के चरित्रगत दौर्बल्य, उसकी महानता, सहिष्णुता, त्याग का सही मूल्यांकन कर सकती है।”

अपनी आत्मकथा में शिवानी अतीत की स्मृतियों में खो कर लिखती हैं- “कहाँ गए वे हँसने-हँसाने वाले और कहाँ गई वे रातें, जब बर्फ की फुहार, धुनी रूई-सी तह-पर-तह बिछती चली जाती थी। लड़कियों, बाहर मत जाना, ऐसे ही में पूरी, चाँचरी, चुड़ैलें कुँआरी लड़कियों को चिपट जाती हैं।” हमसे कहा जाता और हम डर भी जातीं।

शिवानी आगे और लिखती हैं- “बचपन में खाया हुआ अद्भुत पकवान ‘गुड पू’ विलायती चॉकलेट से भी ज्यादा स्वादिष्ट लगता था। दीवाली हो या होली, कैसा उत्साह रहता था और कैसा उल्लास! भले ही आटे के गुड़, सौंफ डले गुलगुले ही क्यों न बनें, पकवानों की सुगन्ध तो घर में बिखरती ही थी।”

शिवानी जी के परिवार में सभी सदस्यों को कहानियाँ सुनने और सुनाने का शौक था। देर रात तक कहानियाँ सुनने और सुनाने का दौर चला करता था। वे अपनी माता जी को ‘किस्सागोई की पट्टमहिणी’ कहती थीं। उनकी माता लखनऊ की थीं और उन्होंने गुजराती साहित्य बहुत पढ़ा था। माता जी द्वारा सुनी कहानियों में ‘झुमकानी चोरी’ शिवानी जी की प्रिय कहानी हुआ करती थी। किस्सागोई परिवार का यह महत्वपूर्ण गुण शिवानी के हिस्से में भी आया था।

मनोरंजन के साधन उस समय कम हुआ करते थे, ऐसे में शिवानी जी मनोरंजन का एक चलता फिरता उदाहरण देती हैं- “इस जीवन में अँगुली पकड़ विधाता ने कैसी-कैसी अली-गलियों की छटा दिखाई है! बचपन में सिर पर मोबाइल सिनेमा का कागजी रंगीन डिब्बा लादे गुजराती दंपति दो-दो पैसे में बहुरंगी नजारे दिखाने का प्रलोभन दे हमें पाइड पाइपर की भाँति अपने साथ खींच ले जाते थे-

देख-बाबू देख  
तू मल्का मजा देख  
मक्का-मदीना देख  
देवर-भौजी देख  
काँटाव निकलता देख  
लैना मजनुँ देख  
और नंगी धोबन देख  
ढाई मन की धोबन देख।

शिवानी के लेखन में उनकी व्यक्ति वर्णन शैली बहुत ही रोचक हुआ करती है। अद्भुत वर्णन शैली के कारण ही उनके कथानक के पात्र जीवंत हो उठते थे। बड़ी बारीकी और

महीनता से वे एक-एक पात्र को गूँथती थीं। उनके व्यक्तित्व से लेकर, उनका बोलचाल, व्यवहार, हावभाव, पोशाकें, क्रिया-कलाप आदि को शिवानी कथानक में ऐसे सहजता के साथ पिरोती थीं कि पात्र हमारे समक्ष खड़ा होकर हमसे बतियाता था। वे किसी भी व्यक्ति चित्रण का वर्णन हू-ब-हू ऐसा किया करती थीं कि लगता था उस व्यक्ति को हम साक्षात् देख रहे हैं, बात कर रहे हैं, समझ रहे हैं। उनकी यही चित्रण शैली उनकी कहानियों एवं उपन्यासों को यथार्थ से जोड़े रखती है। इसी संदर्भ में वे अपनी नानी का व्यक्तित्व वर्णन करती हैं- “हमारी नानी व्यक्तित्वसम्पन्ना दबंग महिला थीं, अत्यन्त करुणामयी, परोपकारी एवं कुशल शासिका। उनका स्फटिक-सा उज्ज्वल गौरवर्ण, तीखी नाक, सफेद झकझक करती इकलाई, वैसी ही ठेठ लखनवी कुर्ता, सन जैसे सफेद बालों से आती असगर अली के चमेली के तेल की सुगन्ध अगरबत्ती के धुएँ-सी पूरे कमरे में फैली रहती।”

शिवानी के पिता उनके लिए आदर्श थे। जीवन के प्रत्येक क्षण में उनके पिता और उनके आदर्शों ने ही शिवानी जी को सफलता एवं सहजता का मार्ग दिखाया। इसलिए वे कहती हैं- “मेरे पिता लिखते जितना सुंदर थे, उतने ही ओजस्वी वक्ता भी थे। लिखते अँग्रेजी में थे, किन्तु जैसा उनके अपने मित्र मि. हैनरी ने हमसे कहा था- तुम्हारे पिता हम अंगरेजों से भी कहीं अधिक सुंदर अंगरेजी लिखते हैं, तुम भी उनसे सीखो। हमने जितना सीख सकते थे, उतना सीखा। अंधकार पर भी मनुष्य विजय पा सकता, दो पैसे का

दिया, थोड़ा-सा तेल और बाती। पिता उनसे कहते-कभी अंधेरे से मत डरना। अंगरेजी साहित्य का उन्होंने फैशन के तहत नहीं, बल्कि गहन व्यापक धरातल पर अध्ययन किया था। उनके अगाध पांडित्य में हर भाषा में एक-सी सहजता दिखाई देती थी।

सच ही कहा था उन्होंने, एकांत साधना भी एक कला है। उनकी मंत्रणा से बहुत नहीं तो थोड़ी सफलता तो कला के इस क्षेत्र में मैंने पा ही ली थी। लेकिन समय के साथ मैं भी बदली हूँ। मैं सोचती हूँ ऐसे उतार-चढ़ाव जीवन में न रहें तो फिर जीवन का सारतत्त्व ही कहाँ रह जाता है?

*तुलसी या धरा को प्रमाण यही,  
जो फरा सो झरा, जो जरा सो बुताना!*

शिवानी जी के पितामह कट्टर सनातनी और कठोर अनुशासक थे। उनके अनुशासन का स्मरण दिलाती कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं- “कहाँ अल्मोड़े में कट्टर सनातनी पितामह का कठोर अनुशासन! सूर्योदय से पहले उठना, फिर त्रिफला के जल से आँखें धोना और फिर गृह के चिरपुरातन अभिभावक लोहनी जी के साथ दीर्घकालीन भ्रमण। लौटकर सात्विकी नाश्ता, फिर आ जाते संस्कृत पढ़ाने पंडित गंगादत्त शास्त्री। हिन्दी-अंगरेजी पढ़ाते स्वयं पितामह, जिन्हें हम बड़बाजू कहते थे।”

अपनी माँ के संस्कारों से शिवानी बेहद प्रेरित रहीं। उनका एक अच्छा उदाहरण शिवानी जी देती हैं- “अम्माँ ने कहा था ‘यह भी नहीं कि एकदम ही झुककर दोहरी हो जाओ’ पर पता नहीं माँ के इस तर्क में कितनी सच्चाई

थी, किन्तु हमने माँ के व्यक्तित्व से यह अवश्य सीखा कि अपना मेरुदंड सतर रखो, कंधे झुकाने भी पड़ें तो तुम्हारा अहित नहीं होगा।” इससे ही ज्ञात होता है कि शिवानी की अम्मा ने उन्हें कैसे उन्नत आदर्शों के साथ बड़ा किया होगा। उस समय भी अपने बच्चों, विशेषकर बेटियों को आत्मविश्वास के साथ सशक्त रूप में खड़े करना, उनकी माँ का सकारात्मक पक्ष उजागर करता है।

वे आगे थोड़ा भावुक होकर लिखती हैं- “अपने सुधी पाठकों के साथ अपनी माँ की स्मृति में एक पवित्र प्रसाद की तरह बाँटना चाहती हूँ। वह माँ, जिसने मेरी लेखनी को गतिशील बनाया, मेरी कल्पना को जन्मघुट्टी पिलाई, विपत्ति के कठिन क्षणों में ‘अस्मन महामोहमये कटाहे’ जैसी एकमात्र पंक्ति का कौरमीन पिलाया, नया जीवन दिया, पचासी वर्ष की अवस्था में भी जिसकी विलक्षण स्मरण-शक्ति देख हम दंग रह जाते थे, अपनी मृत्यु के चार दिन पूर्व, जिसने कमरे में अंगीठी धर, मेरी फरमाइश के साबुत आलू बनाकर खिलाए, उसकी स्मृति भला कैसे धुंधली पड़ सकती है? वह मृत्युपर्यंत मेरा पाथेय तो है ही, मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी अम्मा का एक विलक्षण परिहास-रसिकता में मंडित, अनूठा व्यक्तित्व चौंका भले दे, किन्तु अपरिचित होने पर भी मेरे पाठकों को नीरस नहीं लगेगा।”

अपनी बहन चंदा के बारे में शिवानी जी ने बहुत विस्तृत वर्णन किया है। कदाचित वे उनके काफी समीप थीं। वे लिखती हैं- “धरती-सी सहिष्णु चन्दा, सब कुछ चुपचाप सह लेती। तब

स्नेही उदार जीवन-सहचर का सहारा था। जब भगवान ने वह सहारा सहसा छीन लिया, तो वर्षों का दबाया गया आक्रोश बाँध तोड़कर बह निकला। पति की मृत्यु के बाद, हमारे पिता ने उन्हें ससुराल नहीं जाने दिया, न वहाँ से ही कोई लिवाने आया।” यह लिखते हुए शायद शिवानी जी के हृदय पर पीड़ा का समंदर लहरा गया होगा। कम आयु में बहन को विधवा होते देख शिवानी जैसी कोमल स्वभाव और संवेदनशील स्त्री की लेखनी से जाने कितने दुख प्रवाहित हुए होंगे।

इसी क्रम में वे बताती हैं- ‘हब्बी’ हाँ, हम अपने पिता को इसी नाम से पुकारते थे, उन्होंने क्षीण स्वर में कहा- ‘कह बेटी, क्या कहना है?’ पिता की सबसे दुलारी बेटी ने स्थिर दृष्टि से उन्हें देखा- ‘मेरे मरने के बाद मेरे दोनों बच्चों को अपने पास ही रखना।’

बड़ी बहन चंदा यानी चंद्रप्रभा की मृत्यु के पश्चात् शिवानी जी का परिवार बंगलूर चला आया था। शिवानी जी एवं उनके दो भाई-बहन शांति-निकेतन में पढ़ा करते थे। बंगलूर में उन्हें रियासती पद प्राप्त हो गया था। मि. हेनरी तत्कालीन बार सेक्रेटरी थे, तो पिता को उन्हीं के प्रयास से असिस्टेंट बार सेक्रेटरी का पद प्राप्त हो गया। इस प्रकार हमारे जीवन में छाए, घोर कृष्णवर्णी मेघ खंडों में सहसा स्वर्ण रेखा चमकी। वे दो वर्ष हमारे लिए एक प्राणदायिनी शक्ति लेकर आए। हम तीन भाई-बहन तब शांति-निकेतन में पढ़ रहे थे। छुट्टियों में घर आते तो उस नवीन परिवेश का पूरा आनन्द उठाते, रहन-सहन में अभी भी रियासती उत्स पूर्ववत् था। इतना बड़ा

कुटुम्ब था, दो-तीन नौकर, रसोइया, नौकरानी, हम छह बहनें, दो भाई, बहन के दो बच्चे। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि हमारी माँ कैसे उस वृहत् परिवार का संचालन करती होगी? उसने हमें पढ़ाने में कितना त्याग किया, यह कभी किसी को पता भी नहीं लगता, किन्तु हमारी सूक्ष्म दृष्टि, माँ की यत्न से छिपाई गई, हाथभर चूड़ियों के बीच सोने की चूड़ियों की रिक्तता देख ही लेती। कितने शौक से उसने कभी ये चूड़ियाँ बनवाई थीं। पूछे जाने पर वे नजर चुराकर बात पलट देती- 'अरे गर्मी में सोना एकदम तप जाता है, इसी से उतारकर रख दी है'। हम जानते थे कि माँ की चूड़ियाँ उतारकर रख दी गई हैं, वहाँ से वे उन हाथों से शायद खनकने को वापस कभी नहीं आएँगी।

शिवानी जी की आत्मकथा पढ़ते हुए हम उनके जीवन के अनेक पड़ावों से गुजरे, रुके और यह जाना की उनकी आत्मकथा केवल आत्मकथा नहीं थी, वह उनके जीवन का सार था। वह हर पड़ाव पर अपने पाठकों से जुड़ते जाती हैं, बतियाती जाती हैं।

वे अपने संध्याकाल में चिंतन से प्रेरित हो जीवन के दर्शन को पोषित करती हैं। अतीत की व्यतीत सभी स्मृतियाँ उनके हृदय पर दस्तक देती रहतीं और वे लिखती रहतीं- "मुझे लगता है कि हम जन्म-जन्मांतर के अनेक भावों के, जो मन में स्थिर हो गए हैं, अपने अवचेतना मन में सहेजकर रखते हैं। विभिन्न योनियों में भटकता मनुष्य अपने अवचेतन में न जाने कितने जन्मों की, कितनी स्मृतियों के खंडहर संजोए रखता है और न जाने किस

परिस्थिति में ये संजोई स्मृतियाँ हठात जाग उठती हैं। वे एक लेखक को कभी पर्युत्सुक बनाती हैं, कभी दुरूस्वप्न के माध्यम से भयभीत करती हैं और कभी आनंदातिरेक भावना से गुदगुदाकर छोड़ जाती हैं। जब कभी, अपने खंडहर बन गए मायके के गृह में जाती हूँ तो कभी सुखद रही सैकड़ों स्मृतियाँ उमड़-घुमड़कर पागल बना देती हैं।"

मृत्यु से वे परिचित थीं और सहज भी इसलिए लिखती हैं- 'कितनी मौतें देख चुकी हूँ और अभी न जाने कितनी और देखनी हैं। उन्होंने मेरी बीमारी की सूचना पाकर मुझे लिखा था- बुढ़ापे का सबसे बड़ा अभिशाप यह है कि लोग हमसे असलियत छिपाने लगते हैं। यह सोचकर कि हमारी अशक्त अवस्था यह धक्का झेल नहीं पाएगी। किन्तु कैसी व्यर्थ धारणा है यह उनकी? वार्धक्य मनुष्य की अनेक शक्तियाँ क्षीण कर देता है। किन्तु उसकी अन्तर्दृष्टि को उतना ही मजबूत बना देता है।' उनका यह वाक्य सभी पाठकों को आंतरिक शक्ति दिए बिना नहीं रहता।

'घर का जब कोई बुजुर्ग अंतिम विदा लेता है तो अपने साथ बहुत कुछ समेटकर ले जाता है-मान-मर्यादा, संस्कार, पूर्वार्जित यश एवं बचे-खुचे गृह के सदस्यों का विवेक! मेरे इस सुदीर्घ जीवन में मेरे साथ भी यही हुआ।' यह लिखते हुए कदाचित वे मानसिक रूप से अपनी विदाई को स्वीकार कर चुकी थीं।

शिवानी जी ने जीवन और मृत्यु की सत्यता को सहर्ष स्वीकार किया था, इसलिए उन्होंने जीवन को सादगी से जिया और इसीलिए वे बड़ी शांति

से अनंत में विलीन हुई। प्रचार-प्रसार से दूर... एक सफल लेखिका होने के साथ-साथ वे एक आदर्श व्यक्तित्व थीं, इसलिए शिवानी जी का नाम आज भी सभी बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लेते हैं। वे जीवन की सांझबेला के चिंतन एवं मनन में अनायास ही लिखती हैं....

'अन्त में दीर्घ जीवन ऐकटा दीर्घ अभिशाप। न जाने कितने प्रिय चेहरों को एक-एक कर विलुप्त होते मैंने स्वयं भी देखा और मृत्यु के सम्मुख विवश नतमस्तक खड़ी रही हूँ।

भस्मान्त शरीरं

ऊँ क्रतो स्मर

क्लिव, कृतं स्मर

कृतं स्मर-

यही तो मायावी संसार का नियम है, भस्म ही रह जाती है अन्त में और रह जाती हैं स्मृतियाँ! कबीर इसी सत्य को हृदयंगम कर पाए, तब ही तो उन्होंने दो टूक पंक्तियों में जीव का सार समेट दिया-

दस द्वारे का पींजरा, तामें पंछी पौन  
रहे को आश्चर्य है, गए अचम्भा कौन?

वास्तव में शिवानी जी ने जीवन को भरपूर जिया। संघर्षों ने उनके व्यक्तित्व को, विचारों को और उनके लेखन को और अधिक निखारा। उनका लेखन जीवन का दर्पण है। उनके शब्द-शब्द जीवन का दर्शन है इसलिए वे कहती हैं- "मेरी असमाप्त कहानी भी सदा असमाप्त ही रहेगी, क्योंकि मनुष्य का पूरा जीवन ही तो एक असमाप्त कहानी है।

'वारसी' के शब्दों में कह सकती हूँ-बहुत दिया है तेरा साथ जिन्दगी मैंने...।"



## सफलता की गारंटी

★ हरिशंकर राठी



सह सम्पादक

### इ

क्कीसवीं सदी में रहते हुए भी यदि सफलता की गारंटी न ली जाए तो इस सदी में जीने का कोई अर्थ नहीं बनता। इससे तो अच्छा था कि पाषाण काल में जन्म ले लेते। खींच-खाँचकर मध्यकाल तक क्षम्य था। अब, जबकि सारी दुनिया सफलता पाने और सफलता दिलाने में जुटी है, ऐसी स्थिति में भी इससे वंचित रह जाना 'जल बीच मीन जइसे रहति पियासी' जैसी निंदनीय बात है। इस पर मतभेद हो सकता है कि सफलता कहते किसे हैं, लेकिन इस पर नहीं कि सफलता हर एक को चाहिए।

दरअसल सफलता के चक्कर में असफलताएँ चिपकती रहती हैं और जोंक की तरह रक्तचूषण करती रहती हैं। या तो बिना प्रयास के सफलता हस्तगत हो जाए तो आदमी सफल गिना जाता है, नहीं तो असफलताओं का रिकार्ड तोड़कर। बिना प्रयास की सफलता को कुछ लोग अंधे के हाथ बटेर लगाना भी कहते हैं, परंतु यह एक नकारात्मक विचार है। इसे ईर्ष्या का सुफल भी कहा जा सकता है। जो लोग बारंबार असफल होते हैं, वे असफलता के रोम-रोम से परिचित हो जाते हैं और आगे चलकर सफलता प्राप्ति के सबसे बड़े प्रशिक्षक सिद्ध होते हैं। रोगी भी आगे चलकर खुद को वैद्य समझता है।

सफल बनने वाले भले ही कम हो जाएँ, पर सफल बनाने वाले कम नहीं हो सकते। इसके पीछे निहायत ठोस कारण है। दरअसल, बहुतों की अपनी सफलता दूसरों के सफल होने की आशा पर टिकी होती है। जहाँ सफलार्थियों की आशा हिली, सफलतादायकों का धंधा गया। सो प्रयास यह होता है कि सफलता मिले न मिले, सफलार्थियों की आशा न टूटे।

प्रश्न यह है कि आपको सफलता किस क्षेत्र में चाहिए ? तो केवल एक ही क्षेत्र में या कई क्षेत्रों में ? उस पर भी किस श्रेणी की चाहिए ? सर्वोत्तम या कामचलाऊ ? आसान वाली या मुश्किल-सी ? क्षेत्र का मतलब नौकरी, पढ़ाई, व्यापार, प्रेम, विवाह, बच्चा, कोर्ट कचहरी में जीत, दुश्मन का सत्यानाश, अकूत धन, जादू-टोना, तबादला, राजनीति इत्यादि। इसमें राजनीति सबसे मुश्किल क्षेत्र है। मुश्किल तो लगभग सभी क्षेत्र हैं, किंतु कुछ लोग अपने ही दम पर सफलता पा लेते हैं और ऐसे लोगों को सफलतादायी संस्थान नितांत स्वार्थी मानते हैं। यह तो गनीमत है कि स्वयंसिद्ध सफल लोगों की संख्या कम होती है, अन्यथा सफलायक संस्थाएँ तो बेरोजगार ही हो जाएँ।

जिन क्षेत्रों में सफलतादायक बहुतायत में उपलब्ध हैं, उनमें शिक्षा और नौकरी प्रमुख हैं। शिक्षाजगत में सफलता का दावा करने वालों के पास ठोस

आधार है। उनके पास अतुलित ज्ञान और अनुभव है, आप उचित फीस देकर उसे किराए पर ले सकते हैं। वैसे वे इस ज्ञान को सदा के लिए बेचने का दावा करते हैं और ऐसा शास्त्रों में भी लिखा है कि इस प्रकार का सामान बेच देने के बाद भी (विद्याधन खर्च करने पर बढ़ता है) विक्रेता के पास पड़ा रहता है। उसे वह अगले सत्र में या अगली प्रतियोगी परीक्षा के समय फिर किसी को बेच देता है। बेचे हुए ज्ञान को किराए पर लेने का जिज्ञा इसलिए किया गया है, क्योंकि परीक्षार्थी परीक्षा में सफल होते ही इसे बोझ समझने लगता है। जैसे-तैसे फिल्में देखकर, गाने सुनकर और दोस्तों से अविरल वार्तालाप कर वह किसी प्रकार इस ज्ञान के बोझ से मुक्ति पाता है। चूँकि यह ज्ञान अल्प समय के लिए शुल्क चुकाकर लिया जाता है, इसलिए इसे 'किराए' का ज्ञान कहना न्यायसंगत होगा।

कुछ सफलार्थियों को नौकरी पाने का यह तरीका असाध्य, अनुचित और अप्रासंगिक लगता है। उनका सिद्धांत और व्यावहारिक ज्ञान एक दूसरे के समर्थक होते हैं। जो फसल उगानी है, बीज भी उसी का बोना पड़ता है। अर्थात् यदि पैसा कमाना है तो पैसा लगाना पड़ेगा। वे न्यूनतम अर्हता पूरी करने के बाद पृष्ठद्वार से उचित धनराशि का निवेश कर सरलतापूर्वक सफलता पाने में विश्वास रखते हैं। ऐसा करने से तीन जने या कभी-कभी तीन समूह सफल हो जाते हैं। पहला अभ्यर्थी यानी निवेशक, दूसरा मध्य कड़ी या बिचौलिया और तीसरा वह अधिकार प्राप्त व्यक्तित्व जिसके हाथ में नौकरी रखी है। एक बार

यह प्रयोग सफल हो जाने पर तीनों ही परमानंद को प्राप्त होते हैं और तीनों ही स्वयं को सर्वाधिक लाभ की स्थिति में पाते हैं।

सफलता का दावा करने वाले तो प्रेम, विवाह और जादू-टोना के क्षेत्र में भी हैं, लेकिन उनका क्षेत्र रहस्यमय और चुनौतीविहीन है। चूँकि प्रेम, विवाह और जादू-टोना लगभग एक जैसे क्रिया-कलाप और रहस्यमय शक्तियों द्वारा संपन्न होने वाले अनुष्ठान

जादू-टोना करवा देना या जादू-टोना हो जाने का भ्रम हो तो उसे दूर कराना। मजे कि बात कि इनके पक्ष-विपक्ष का ज्ञाता, साधक और सफलतादायक एक ही मनुष्य होता है। यह इन्द्रियों द्वारा भोगा जाने वाला अतीन्द्रिय विज्ञान है। इस विज्ञान को आइंस्टाइन से लेकर सिगमंड फ्रायड तक नहीं समझ सकते। इसके लिए तो विशेषज्ञ केवल हमारे वतन में बने हैं। इसके लिए किसी सरकारी या गैर सरकारी संस्थान की कोई

इन अतीन्द्रिय वैज्ञानिकों के भी अनेक वर्ग, सिद्धांत और तकनीक हैं। कुछ ऐसे हैं जिन्हें एक लौंग में पूरा ब्रह्मांड दिखता है। कौन-सी बुरी आत्मा, भूत-पिशाच या ब्रह्मराक्षस किस कारण से अनर्थ कर रहा है, इन्हें लौंग नामक सूक्ष्मदर्शी या दूरबीन में दिख जाता है। चावलों की शक्ति से उसे ये पटखनी दे देते हैं या उससे मनचाहा काम करा लेते हैं। जितनी भी बाधाएँ जीवन में होती हैं, वे आपके मतानुसार अदृश्य होती हैं और केवल इनके राडार की रेंज में हैं। इनका रिमोट बहुत शक्तिशाली है। यहाँ तक कि महिलाओं के लिए संतानोत्पत्ति का दावा जिस गारंटी से ये करते हैं, उतना तो फर्टिलिटी सेंटर, टेस्ट ट्यूब बेबी और सरोगेट मदर के चिकित्सक भी नहीं कर पाते।

हैं, इसलिए इनमें आने वाली बाधाएँ भी रहस्यमय शक्तियों द्वारा ही दूर की जाती हैं। इनमें भी दो पहलू हैं - - कोई वांछित युवती या युवक प्रेम न कर रही हो या न कर रहा हो तो उससे प्रेम हो जाने का उपाय तलाशना, या अनधिकृत प्रेम हो गया हो तो अधिकृत पति या पत्नी द्वारा उस प्रेम का विध्वंसन कराना। किसी का विवाह न हो रहा हो तो विवाह कराना और हो गया हो तो विच्छेद कराना। इसी प्रकार किसी के सुखी जीवन से आहत होकर

शैक्षणिक सनद की भी जरूरत नहीं है। केश थोड़े लंबायमान हों, खिचड़ी कलर हो तो महत्ता और बढ़ जाती है। आँखों का रंग सामान्य न हो, हो भी तो मदिरा और गांजा-अफीम के सतत पथ्य से रंग बदरंग हो ही जाता है। उससे सिद्ध होता है कि यह पुरुष सिद्ध है, इसके वश में पराभौतिक आत्माएँ हैं, जिनका संचार हरेक दिशा और हर समय होता रहता है।

इन अतीन्द्रिय वैज्ञानिकों के भी अनेक वर्ग, सिद्धांत और तकनीक हैं।

कुछ ऐसे हैं जिन्हें एक लौंग में पूरा ब्रह्मांड दिखता है। कौन-सी बुरी आत्मा, भूत-पिशाच या ब्रह्मराक्षस किस कारण से अनर्थ कर रहा है, इन्हें लौंग नामक सूक्ष्मदर्शी या दूरबीन में दिख जाता है। चावलों की शक्ति से उसे ये पटरखनी दे देते हैं या उससे मनचाहा काम करा लेते हैं। जितनी भी बाधाएँ जीवन में होती हैं, वे आपके मतानुसार अदृश्य होती हैं और केवल इनके राडार की रेंज में हैं। इनका रिमोट बहुत शक्तिशाली है। यहाँ तक कि महिलाओं के लिए संतानोत्पत्ति का दावा जिस गारंटी से ये करते हैं, उतना तो फर्टिलिटी सेंटर, टेस्ट ट्यूब बेबी और सरोगेट मदर के चिकित्सक भी नहीं कर पाते। वैसे प्रायः मौका मिले तो ये सफलता प्रदान करके ही छोड़ते हैं, बशर्ते महिला भी सफलता चाहती हो और उसमें किसी प्रकार की कमी न हो।

इनका दावा तो खैर कुछ भी नहीं। ये तो पता नहीं किस परमशक्ति से सफलता देने का दावा करते हैं, यह रहस्य ही रह जाता है। यहाँ तो लोग हमारी रोजमर्रा की दुकड़ही चीजों से भाग्य का पासा पलट देते हैं। बहुत से सफलार्थी तो समोसा, पकौड़ी और तरबूज खाकर और खिलाकर 'कृपा' प्राप्त कर लेते हैं। गरीब बच्चों में टॉफी बाँट देने से नौकरी लग जाती है, मकान बन जाता है और उच्च न्यायालय में चल रहे मुकदमें में बिना सबूत के ही जीत हो जाती है। बाबाजी की महिमा बाबाजी ही जानें। न जाने कौन-सी महाशक्ति सिद्ध कर रखी है। चना-चबेना, नारियल और सुपारी से राई का पहाड़ बना सकते हैं। उनकी शक्ति को मानना ही पड़ेगा। उनके मामले में

तो यह भी नहीं कहा जा सकता है कि उनके भक्तजन अनपढ़-गँवार हैं। यहाँ तो अच्छे खासे एम. ए., पीएचडी तक आते हैं और जयकारा लगाकर जाते हैं। बाबाजी ऑल इन वन हैं। घर-मकान, शादी, नौकरी, विदेशगमन, कैसर का इलाज, उच्चतम न्यायालय के मुकदमे में जीत, जमीन और न जाने क्या-क्या! उतनी तो दुनिया में समस्याएँ नहीं होंगी जितने इनके पास समाधान। और वह भी निहायत सस्ता। हलवा, कचौरी, आइसक्रीम और पड़ोस के मंदिर में दर्शन जैसे सरल उपाय। पता नहीं देश की सरकार इनके दरबार में क्यों नहीं जाती ? जब इतने सरल उपाय मौजूद हैं, फिर बेमतलब का इतना बड़ा सरकारी ताम-झाम फैलाने की क्या जरूरत ? ज्यादा से ज्यादा समागम की फीस दो हजार रुपये, पहले समागम में नहीं तो दूसरे में नंबर आ ही जाएगा। बेरोजगारी, आंतकवाद और भ्रष्टाचार को भी क्या पता समोसे-चटनी से खत्म कर दिया जाए। इनके दरबार में और इस देश के बीच कुछ भी हो सकता है।

वैज्ञानिक चाँद-सूरज या मंगल-ग्रह तक पहुँच जाएँ, पृथ्वी की उत्पत्ति का रहस्य खोज लें या सभी घटियाजनों के लिए अमरत्व की वैक्सीन बना लें, लेकिन वे सफलता का वह दावा नहीं कर सकते जो हमारे गुणीजन टोटकों और टिप्स से कर दिखाते हैं। चौराहे पर नींबू काटकर फेंक देने और राई बिखेर देने से कितनों की मृत्युकारक दुर्घटना टल गई, इसके आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इस देश में जान-माल का जो नुकसान हो जाता है, जैसे-तैसे करके उसी के आँकड़े उपलब्ध हो जाएँ तो बड़ी बात है।

ऐसे हानि-लाभ जो हुए ही नहीं, उनका हिसाब रखना तकदीर से मुखालफत करना है। तिजोरी और संदूक में किसी जानवर का बाल या किसी मंदिर का फूल रख देने से भी वह अक्षयपात्र बन जाती है ! काले कुत्ते को शनिवार को पहली रोटी में गुड़ और तिल मिलाकर खिला देने से किस प्रकार परम प्रतापी दुश्मन हलाक हो जाता है, यह बताने की बात नहीं है। समझ में नहीं आता जब इस देश में काले कुत्तों, पहली रोटी और तिल की कोई कमी नहीं है तो यह प्रयोग राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शत्रुओं पर क्यों नहीं किया जाता ? जो धनराशि सेना और मिसाइलों पर खर्च की जा रही है, उसका अल्पांश काले कुत्तों, कौओं और अन्य शत्रुसंहारक जीवों और टोटकों पर क्यों नहीं किया जाता, जबकि इसमें भी सफलता की गारंटी लेने वाले जनरल बहुत हैं।

टोटकों से कम महत्त्व उपयोगी टिप्स का नहीं है, क्योंकि ये तो बड़े अनुभव से प्राप्त हैं। टिप्स मनोवैज्ञानिक स्तर पर आजमाए हुए होते हैं और कम मेहनत में बड़ी सफलता देकर जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप कोई दूकान, शोरूम, संस्थान या उद्योग स्थापित कर रहे हैं तो उत्पाद की गुणवत्ता पर अधिक ध्यान न देकर उसके नाम और विज्ञापन पर अधिक ध्यान दें। नाम ऐसा रखें कि बिलकुल ताजा हो, नए फैशन और बिना अर्थ का हो। एक बात और, उसे पूर्णतया स्थानीय भाषा में न होने दें। या तो वह किसी आयातित भाषा में हो या फिर आदिवासी भाषा में। आज के दौर में अंगरेजी या किसी अन्य योरोपियन भाषा का नाम





जिनके नाममात्र से आप दो भाषाओं का आनंद ले सकते हैं। न जाने कितने लोगों ने अपने जीवन की असफलताओं का निचोड़ निकालकर जनता को आगाह किया है कि इन गलतियों से बच गए तो आप स्वाभावतः सफल हो जाएँगे। कुछ तो इतने माहिर हैं कि लिखते भी नहीं, केवल बोलकर ही सफलता का रास्ता साफ कर देते हैं। बस आपको चलते जाना है इस रास्ते

वे अपने कौशल और बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हैं। बड़ा-सा भंडारा होता है, हजारों की संख्या में गाड़ियाँ और लाखों की संख्या में भक्तजन पहुँचते हैं। वहाँ से बाबाजी के उत्पाद और गुरुमंत्र लेकर घर आते हैं। अगले दिन से फिर पड़ोसी के घर आने-जाने वालों, उसकी बेटी के चाल-चलन, उसके आने जाने का समय, उसकी शारीरिक भाषा तथा पड़ोसी के घर आने वाली सब्जी की गुणवत्ता पर भी पैनी दृष्टि बनाए रखते हैं। गुरुजी की फोटो यदि घर में टँगी है तो मोक्ष तो मिलना ही मिलना है।

सफलता भोजन और वस्त्रों से भी मिलती है। यह तो कुछ लोगों के जीवन का परम लक्ष्य है। यदि आपका वस्त्र समस्त परिचितों और रिश्तेदारों से बेहतर नहीं है, तो यहीं जीवन खराब हो गया। आगे के विषय में क्या सोचना ? सो, येन-केन प्रकारेण ऐसे वस्त्रों और आभूषणों का इंतजाम किया जाए, जिससे असुंदर काया सुंदर और सुंदर काया अति सुंदर या खतरे के निशान से ऊपर तक सुंदर हो जाए। यही हाल भोजन का भी है। यदि एक समय अति सुंदर भोजन न मिले तो जीवन को चौपट माना जाए। भोजन सुंदर वही है जिसकी विविधता और मूल्य देखकर एक सामान्य मध्यवर्ग की हथेलियों तक में पसीना आ जाए।

सफलताएँ बिक रही हैं, बँट रही हैं और लुट रही हैं। यदि इस दौर में भी आप सफल नहीं हो पाए तो इतिहास आपको कभी माफ नहीं करेगा।

सर्वाधिक उपयोगी रहेगा। अब अपने यहाँ अंगरेजी भी कोई मुश्किल नहीं रही, सो उसे थोड़ा मुश्किल बना दीजिए। मसलन, उसकी वर्तनी और उच्चारण में दूर-दूर तक कोई तार्किक रिश्ता न रहने दीजिए। जैसे वर्तनी के हिसाब से एक नाम 'झरपेटिए' रखा गया तो उसे 'झटे' पढ़ा जाए। इसे पढ़ाने के लिए विज्ञापनों का सहारा अवश्य लेना पड़ेगा, किंतु इससे जो रहस्यवाद पैदा होगा, वह आपके लिए सफलता की गारंटी होगा। इसी प्रकार किसी भी नाम के आखिरी अक्षर को आठ-दस बार चेपकर भी नवीनता और विश्वसनीयता की भावना पैदा की जा सकती है।

सफलता विषयक ग्रंथ भी विकराल मात्रा में उपलब्ध हैं। कई भाषाओं में उपलब्ध हैं और आकर्षक जिल्द और शीर्षक में उपलब्ध हैं। अब तो 'सक्सेस मंत्र' जैसे शीर्षक के अंतर्गत भी सफलतादायक ग्रंथ आ रहे हैं

पर। हाँ, ये काम ज्यादा दिनों निःशुल्क नहीं चलता। अपनी सफलता भी तो देखनी है। सो यदि टीवी पर यह कार्यक्रम मिल जाए तो फिर पूछना ही क्या !

वैसे अपने यहाँ जीवन की सबसे बड़ी सफलता मोक्ष और परलोक सुधारना माना जाता रहा है। इसमें सफलता की गारंटी देने वाले सर्वाधिक हैं। इस क्षेत्र में सफलता की गारंटी डंके की चोट पर दी जा सकती है। कारण यह कि अब तक इस मामले में एक भी शिकायत नहीं आई है। मोक्ष और स्वर्ग का प्रोडक्ट खरीदने वाला आज तक उस अज्ञात स्थान से वापस नहीं आया जहाँ वह यह माल लेकर गया था। आया भी होगा तो होशो-हवाश में नहीं आया। सो यहाँ के नए ग्राहकों को जाँच-पड़ताल का मौका नहीं मिला। इस सफलता के अनेक केंद्र खुले हुए हैं। सर्वाधिक सफलता सत्संग से मिलती है। सत्संग मतलब वही बाबाजी का आश्रम जिसमें



# आमी आसची लौट कर आती हूँ

★ डॉ. रंजना जायसवाल



**रचनात्मक उपलब्धियाँ**  
देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं अन्य विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित। विभिन्न विधाओं की दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित।

**सम्मान:**  
अनेक संस्थाओं द्वारा साहित्यिक सम्मान

**संपर्क**  
लाल बाग कॉलोनी  
छोटी बसही  
मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश  
पिन - 231001

Email : ranjana1mzp@gmail.com

‘बे टा-बेटी दोनों एक समान, यह तो है आपकी शान’

सामने दीवार पर लिखे स्लोगन को पढ़कर वर्षा के चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कान आ गई। रात घनी होती जा रही थी और सामने दीवार पर पड़ती परछाई और बड़ी होती जा रही थी-शायद उसके दुःख की तरह! वर्षा खिड़की के पास आकर खड़ी हो गई, आकाश बादलों से भरा हुआ था। चाँद बादलों के चंगुल से अपने आप को छुड़ाने की नाकाम कोशिश कर वहीं-कहीं बादलों में खो गया था। वह भी तो छटपटा रही थी अपनी परिस्थितियों से चाहकर भी अपने को छुड़ा नहीं पा रही थी। एक अंतहीन बेबसी, न खत्म होने वाला संघर्ष और अप्रत्याशित बेचारगी ने उसे ऑक्टोपस की तरह जकड़ रखा था। ऑक्टोपस की असंख्य भुजाओं की तरह ताकतवर चिंता, परेशानियों और एक अनिश्चित भविष्य ने उसे कसकर जकड़ रखा था। वह जितना भी उससे निकलने का प्रयास करती, उनकी शक्ति मानो और भी बढ़ जाती। वह उससे निकलने का भरपूर प्रयास करती पर उसका यह प्रयास निरर्थक साबित होता।

जाड़े की इन सर्द रातों में हवाओं में एक खुशबू घुली हुई थी। तभी हवा का एक ठंडा झोंका उसके बालों को सहला गया। हवा की ठंडी लहर पूरे शरीर में दौड़ गई। उसने शॉल को कसकर अपने तन पर लपेट लिया और खिड़की को पकड़ चाँद को बादलों में ढूँढ़ती रही, पर उस धुँधलके में वह कहीं नजर न आया, यह धुँधलका बादलों की वजह से नहीं था, शायद उसकी आँखों में भर आए आँसुओं की वजह से था। आँसुओं ने नजर को धुँधला कर दिया था। वह सोच रही थी, काश! दीवार की तरह दिलों में भी खिड़की होती तो शायद दिल का दर्द कुछ कम हो जाता। उसने खिड़की के पल्ले को हल्के से हुड़का दिया, पर हवा के झोंके की वजह से वह भड़ की आवाज के साथ चौखट से टकरा गया। शराब में धुत विनय जो बिस्तर पर औंधे मुँह लेटा हुआ था, आवाज से हौले से कुनसुनाया। उसके मुँह से सस्ती शराब की महक यहाँ तक आ रही थी। विनय नींद में बड़बड़ाया।

‘साली! मुझ से जबान लड़ाती है।’

उस बेहोशी में भी उसने वर्षा को मारने के लिए हवा में अपना पैर लहराया और उसका आधा शरीर बिस्तर से नीचे लटक गया। वर्षा ने वितृष्णा से अपना



मुँह फेर लिया,

‘छिः! इससे प्यार किया था उसने—इसके लिए वह अपने घर—संसार को छोड़ आई थी।’

उसने अपने शरीर पर पड़े नील की ओर देखा, मुँह से एक टीस निकल आई। रोज की ही बात हो गई थी अब—वह शराब के लिए उसे रोकती और वह उसे पीटता। शुरू-शुरू में तो वह पूरी-पूरी रात रोती रहती, पर वक्त के साथ वे आँसू भी सूख गए। विनय के साथ नई दुनिया बसाने के लिए वह सब कुछ छोड़ आई थी, सपनों और उम्मीदों के साथ कि वह उसके साथ घर बसाएगी पर एक मंगलसूत्र, एक चुटकी सिंदूर की उसे इतनी बड़ी कीमत चुकानी होगी, उसने कभी भी सोचा न था।

कुछ ही दिन ही देखती रही। रजाई विनय के शरीर से सरक कर जमीन पर लोट रही थी। नींद में वह कितना मासूम लग रहा, उसने जमीन पर लोट रही रजाई को उठाया और उसके तन को ढक दिया। वर्षा ने अपनी उंगलियाँ उसके बालों में फिराई और उसे एकटक देखती रही। जिस आदमी के साथ जिंदगी गुजारने के ख्वाब देखे थे, वो पीठ उसकी ओर किए सो रहा था। उसे लगा मानो उसके ख्वाब मुँह फेर कर बैठे हैं। वह सोच रही थी, रिश्ते और सपने भी कांच की तरह ही होते हैं, कब टूटकर बिखर जाएँ खबर भी नहीं लगती। न जाने कितने सवाल उसके मन में घुमड़ रहे थे। क्या एक स्त्री पीटने और पुरुष पीटने के लिए ही पैदा होता है? साथ चलने, सात जन्मों तक साथ निभाने वाला जीवन साथी यूँ अचानक ईश्वर और मालिक कैसे बन जाता है और एक औरत सिर्फ एक चुटकी सिंदूर की वजह से उम्रभर की दासी बन जाती है? दिमाग फटने लगा—कुछ सवालों के जवाब नहीं होते, वे उम्र भर सिर्फ टीस देते रहते हैं।

‘तेरे सामने मैं—तेरा जीता जागता सुहाग खड़ा है, तुझे इस मंगलसूत्र की क्या जरूरत!’

यही तो कहा था उसने उस दिन—क्या वो सिर्फ उसके सुहाग की निशानी थी? वो काले-पीले दाने एक औरत के सुहाग की

नहीं—उसके विश्वास की भी तो निशानी होती है कि उसको पहनाने वाले हाथ कभी भी उसके साथ गलत नहीं होने देंगे। आज वही हाथ उसके विश्वास तक पहुँच गए। वर्षा के हाथ अपनी गर्दन पर पहुँच गए, उंगलियों के हल्के से स्पर्श से एक टीस निकल गई। झटके से खींचे गए मंगलसूत्र की वजह से उसकी गर्दन पर लाल निशान उभर आए थे, वक्त के साथ घाव सूखने लगे थे पर कुछ घाव, कुछ चोट बहुत गहरी होती है। कहते हैं घाव वक्त के साथ भर जाते हैं, पर अंदरूनी चोट बाहरी चोट से ज्यादा गहरी होती है। वह उस चुटकी भर सिंदूर और मंगलसूत्र की कितनी बड़ी कीमत चुका रही थी।

वर्षा बड़ी देर तक विनय को ऐसे

इन पाँच सालों में क्या—क्या नहीं सहा था उसने—अंदर कहीं कुछ गहरे दरक गया। साथ जीने—मरने की कसम खाने वाला विनय न जाने कहाँ गुम हो गया था। कभी—कभी तो उसे विश्वास भी नहीं होता था कि उसने इस लड़के से प्यार किया था। पाँच फीट दस इंच, गठीला बदन, चौड़े कंधे जिसकी एक झलक पर कॉलेज की लड़कियाँ मरती थी। उस लड़के ने उस साधारण—सी दिखने वाली लड़की को चुना था। वर्षा

अपने भाग्य पर कितना इतराती थी, पर न जाने उसकी खुशियों को किसकी नजर लग गई। उसके एक वायदे पर वह अपने सारे रिश्ते, सारे सपने पीछे छोड़ आई थी। कितने सपने देखे थे उसकी माँ ने उसकी शादी के लिए-कब से सामान जुटा रही थी वो! पापा माँ की इन हरकतों पर हँस देते।

“अरे! अभी तो उसकी खेलने-खालने की उम्र है और तुम अभी से-!”

माँ पापा की बात पर झुंझला जाती, “इक्कीस की हो गई, बगल वाले शुक्ला जी की बिटिया वर्षा से डेढ़ साल छोटी थी। उसकी शादी भी हो गई और ये अभी !”

पापा माँ की बात सुन चिढ़ जाते।

“इसका क्या मतलब? शुक्ला जी की बिटिया की शादी हो गई तो हमें भी अपनी वर्षा की शादी कर देनी चाहिए?”

“आप तो कुछ समझते नहीं, आए दिन अखबारों में निकलता रहता है। जवान लड़की है कहीं कुछ कर।”

लफ़्ज जुबान पर आते-आते रह गए। पापा का चेहरा गुस्से से लाल हो गया।

“तुम्हें अपने ही संस्कारों पर भरोसा नहीं? कल कोई कुएं में कूद रहा होगा तो तुम भी कूद जाना। तुम्हें जीवनभर इस बार का अफसोस रहा कि तुम्हारे अम्मा-बाबूजी ने तुम्हें पढ़ने का मौका नहीं दिया। कम उम्र में शादी कर दी, आज वही गलती तुम अपनी बेटी के साथ करने जा रही हो। एक सुनहरा भविष्य उसका इंतजार कर रहा

है। शादी-ब्याह तो होता रहेगा, अभी तो इसे सिविल सर्विसेज की भी तैयारी करनी है।”

माँ का डर सही निकला, उसने एक बार भी कहाँ सोचा था माँ-पापा के लिए-वो तोड़ आई थी पापा के सपनों को-छोड़ आई थी माँ के अरमानों को!

कितना बदल गया था सब कुछ-

आज भी याद है उसे-वह कॉलेज के लिए निकल रही थी। आज उसकी एक्स्ट्रा क्लासेस थी, विनय से भी तो मिलना था उसे-जल्दी करते-करते भी न जाने क्यों देर हो गई थी।

“वर्षा नाश्ता कर ले, मेज पर लगा दिया है।”

“माँ, कैटीन में कर लूँगी, देर हो रही है।”

“यह लड़की भी ना, कभी जल्दी नहीं उठती और उसके बाद भागा-भागी करती रहती है।”

माँ लगातार बड़बड़ा रही थी।

“माँ! मुझे कॉलेज के लिए देर हो रही है। मैं जा रही हूँ।”

“इतनी बड़ी हो गई पर आज तक अक्ल नहीं आई।”

“अब क्या हुआ माँ?”

वर्षा ने झुंझला कर कहा।

“मैं जा रही हूँ नहीं कहते-आमी आसची मैं लौट कर आती हूँ कहते हैं।”

हूँ! क्या पता था वह ऐसे जाएगी कभी न लौटने के लिए!

टी. वी. पर उद्घोषिका गला फाड़-फाड़ चिल्ला रही थी। प्रेमी ने

प्रेमिका की हत्या कर उसकी लाश के टुकड़े कर शरीर के हिस्सों को जंगल में फेंक दिया। सोशल नेटवर्क लोगों के विचारों से भर गया। कोई कहता, कितना निर्मोही था जिससे प्यार किया, जिसके साथ जिंदगी बिताने के सपने देखे, उसकी हत्या करते वक्त, उसको काटते वक्त उसकी रूह नहीं कांपी? कोई कहता, वह इंसान नहीं जानवर था। कोई कहता, अचानक तो ये सब नहीं हुआ होगा, चीजें धीरे-धीरे बिगड़ी होंगी। वह लड़की उस आते हुए खतरे से बेखबर क्यों थी? बेखबर! जिसको खुद की खबर न हो, वह बेखबर क्या होगी? शायद वह डूबी हो उसके प्रेम में सर से पांव तक, शायद उसके लिए भी रास्ते बंद हो गए हों। हर उस लड़की की तरह जो छोड़ आती है, मायके की दहलीज को एक शरक्स के लिए अपना अतीत, वर्तमान और भविष्य सोचे बिना !

कोई कहता, अच्छा हुआ, ऐसी लड़कियों के साथ ऐसा ही होना चाहिए। तो कोई कहता, ये है आजकल की लड़कियों की आजादी। तो कोई कहता, एक बार तो कहती अपने दोस्तों, रिश्तेदारों या फिर माँ-बाप से। वापस लौट आती तो शायद जीवित होती? क्या सचमुच! यह विश्वास उसे जीते जी क्यों नहीं दिलाया गया, लौट आओ हम हैं तुम्हारे लिए। कुछ चीजें कभी लौट कर नहीं आती-अपनत्व, भरोसा और विश्वास। इस सर्द मौसम में भी वर्षा को अचानक गर्मी महसूस होने लगी। गर्दन के नीचे पसीने की बूंद चुहचुहा

गई। आँखों का खारा पानी गर्दन तक लुढ़क गया। पसीने और आँसू के खारे पानी ने गर्दन के घाव को हरा कर दिया। शायद बी पी बढ़ गया था, इन दिनों तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती थी। गला प्यास से सूख रहा था, उसने बगल में रखे जग को उठाया। जग खाली था। वह किचन की ओर बढ़ी, आज खिड़की फिर खुली रह गई थी, बिल्ली रोज खिड़की से आकर दूध पी जा रही थी। उसने खिड़की बन्द करने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। सामने काली सड़क पर एक सफेद कार तेजी से जाती हुई दिखाई दी। वह सोच रही थी, यह जो

सड़क जा रही है न, सच पूछिए तो वह कहीं नहीं जाती। जाते तो हम हैं और पीछे छोड़ जाते हैं बहुत कुछ, हाँ बहुत कुछ। उसकी जिंदगी भी तो बिल्कुल ऐसी ही है! वह सोच रही थी, वह क्यों नहीं कह पाई, मैं जा रही हूँ, पर माँ तुम भी तो नहीं कह पाई। जब बोर्ड के रिजल्ट में मेरे नम्बर कम आए थे, तब तुम्हीं ने कहा था, जो हुआ सो हुआ। सब कुछ भूलकर एक नई शुरूआत करो। माँ इस बार तुम क्यों नहीं कह पाई, मैंने जो किया वो सही नहीं था। पर, माँ तुमने भी तो उस तथाकथित समाज के ठेकेदारों की ही चिंता की। तुम हमेशा

कहती थी ये रिश्तेदार किसी के नहीं होते, पर तुमने उन्हीं की खातिर घर लौटने के मेरे सारे रास्ते बंद कर दिए। मैं जानती हूँ मेरी गलती माफ करने लायक नहीं थी, पर क्या कोई गलती तुम्हारी सन्तान से भी ज्यादा बड़ी थी जिसे माफ नहीं किया जा सके? इन बीते सालों में एक दिन भी नहीं गया, जब मैंने पापा और तुमको याद न किया हो। माँ तुम क्यों न कह पाई, “मैं जा रही हूँ नहीं कहते, आमी आसची मैं लौट कर आती हूँ कहते हैं।”



## सीढ़ियों से चढ़ते हुए

कविता

साँझ के धुँधलके में  
वह जब अपने ऑफिस से निकलती थी,  
उत्साह और व्याकुलता लिए  
बस मुझे देखने और  
बारम्बार चूमने के लिए  
इसी इंतजार में बैठा रहता था मैं।  
आज वो निराश, खामोश और बेबस महसूस कर रही थी  
ऑफिस से निकलते हुए  
अपने स्मृति में बीते सुखद क्षणों को,  
अपने आंसुओं से धोते हुए।  
अपार्टमेंट के मुख्य दरवाजे पर दस्तक दे रही थी,  
दबे और निराश अनमने रूप में,  
सीढ़ियों से चढ़ते हुए  
बड़ा भारी लग रहा था उसे अपने कमलवत् पांव को उठाने में,  
दरवाजों के पटों को जब खोला,  
सामने रोशनी में मैं आज नहीं था,  
आज बस उस कमरे में अंधेरा था,  
और वो उस अंधेरे में तलाश रही थी मेरा शक्ल।  
दीवारों में लटकी खूटियों की सभी प्रतिमा में।  
आज रोशनी में मेरी छाया भी नहीं थी और



न ही मेरा अहसास था।  
बस था तो वो मेरी खुशबू  
तकिए और चादर में  
और आज कुछ गायब था तो उसके चेहरे की चमक  
बस उसकी आँखों में आँसुओं की धार थी।  
आज उसे हमारे हाथ का पानी पिलाना,  
अदरक की गरम चाय याद आ रही थी।

बस एहसास ही तो है  
जो नृत्यरत संध्या को  
आज बेरंग बना डाली है,  
गीत का गुनगुनाना भी नहीं आया आज उसे।  
मैं प्रवासी पक्षी की तरह  
अपने ठिकाने की ओर जो चल दिया था,  
रोते हुए, आंसुओं को छिपाते हुए।  
तुम्हारी आत्मा के द्वीप को छोड़कर।।

सम्पर्क:

अजय पांडेय

29 एबी, बिरला फॉर्म, ए-ब्लॉक,  
छत्तरपुर एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110074  
फोन - 8318621600

## गिरे तो गिरे कैसे !



★ प्रभात गोस्वामी

# ले

लेखक जी का सत्ता मोह भी हर सुबह एक नई अंगड़ाई लेता है। किसी को लुभाने और अपने वश में करने के लिए अंगड़ाई का खासा महत्त्व जो होता है। शासन में कोई भी हो, लेखक जी सबको साधने और लुभाने में माहिर हैं। हर राज में उनकी पकड़ और साहित्य जगत में राज करने का 'राज', आज तक कोई दूसरा लेखक नहीं समझ पाया है !

बहरहाल, लेखकजी नए-नए जीत कर आए एक युवा नेता जी पर कुर्बान हैं। उन्हें पक्का यकीन है कि राजनीति की कच्ची मिट्टी में गढ़कर आए नेता जी को वह अपनी इच्छानुसार ढाल लेंगे ! पर होता हमेशा ही इसके विपरीत है। कुछ दिनों में ही पक्की मिट्टी से बने होने के बावजूद लेखक जी सामने वाले की इच्छानुसार ढल जाते हैं !

अब लेखक जी हर दिन नए नेता जी के घर पहुंचकर उनकी शान में कशीदे पढ़ने लगे हैं। उनकी जीवनी और जीवन-संगिनी की जरूरतों पर भी काम शुरू कर दिया है। लेखक जी की चमचई का रंग फिर से चमकने लगा है। उनकी रचनाएँ पाठ्यक्रमों में शामिल होने लगीं हैं। पुरस्कारों की सूची में उनका नाम शामिल किया जा रहा है। अकादमी का अध्यक्ष बनने का प्रस्ताव उन्हें इसलिए नहीं जंचा कि वहां उनके धुर विरोधी टिकने नहीं देंगे। ऐसे में राज की आँखों से चश्मे के नंबर सरीखे उतरते देर भी नहीं लगती है।

लेखक जी का मानना है कि राज के साज से सुर मिलाने में जो आनंद मिलता है, ऐसा विरोध में स्वर उठाने वाले क्यों नहीं समझ पाते ? वह राज के कंधे से कंधा मिलाकर लिख रहे हैं। यह दीगर बात है कि सत्ता का भार उठाने वाले लेखक जी के कंधे, अब समाज का भार उठाने के काबिल नहीं रहे !

हाल ही में लेखक जी ने एक नेता चालीसा लिखी है। जिसे नेताजी के क्षेत्र में घर-घर पढ़वाने की कार्य योजना भी बनाई है। चापलूसी की चासनी में पगे कुछ नए नारे गढ़ने, नेताजी के सार्वजनिक मंचों पर दिए जाने वाले भाषणों का लेखन भी कर रहे हैं। नेताजी उनकी इन सेवाओं से गदगद हैं। साहित्य और सत्ता का यह गठजोड़, विपक्षी एकता के किसी भी गठजोड़ से कहीं अधिक मजबूत है।

लेखक जी की इस सफलता से साहित्य जगत में ईर्ष्या की आग जंगल की आग की तरह से फैलती जा रही है। अलग-अलग साहित्यिक समूहों के

**जन्मतिथि :**

05 मार्च, 1959, बीकानेर,  
राजस्थान

**शिक्षा :**

एम.ए. (हिंदी)

**प्रमुख कृतियाँ :**

पांच व्यंग्य संग्रह. 9 साप्ताहिक व्यंग्य संग्रहों में रचनाएँ शामिल। देश के प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य रचनाओं का नियमित प्रकाशन. डिजिटल टीवी पर कार्यक्रमों का संचालन

**सम्प्रति :**

व्यंग्य लेखन एवं स्वतंत्र पत्रकार

**सम्पर्क:**

15/27, मालवीय नगर,  
जयपुर (राजस्थान)

मोबाइल - 9829600567



धुर विरोधी उन्हें पटरवनी देने के लिए इन दिनों एकता के सूत्र में बंधने के प्रयासों में जुटे हुए हैं। पर विचारधारा के विपरीत धुवों का यह मिलन होगा नहीं। ऐसा लेखकजी का मानना है। इस बीच नेता जी ने सभी साहित्यिक समूहों को एक मंच पर लाने के लिए एक साहित्य-सम्मलेन का आह्वान कर दिया।

लेखक जी को यह बात कत्तई हजम नहीं हो पा रही है। पर मरता क्या नहीं करता? लेखक जी ने पहाड़ की सुरम्य वादियों में प्रस्तावित इस साहित्य सम्मलेन की तैयारियां शुरू कर दी हैं। नेताजी का मानना है कि पहाड़ के प्राकृतिक माहौल में विरोधी लेखक, शहर के प्रदूषित वातावरण से दूर, सकारात्मक सोच के साथ उनके पक्ष में हो जाएंगे। उन्हें लिखने के लिए राज की स्याही से

भरी सुनहरी कलम उपहार दिए जाने का निर्णय भी लिया गया है। वैसे विरोधी भी अपने विरोध को दरकिनार कर ऐसी तफरीभरी यात्राओं का इंतजार करते ही रहते हैं! पर लेखकजी परेशान थे कि क्या साहित्य की सत्ता में एकाधिकार में अब भागीदारी बढ़ जाएगी?

आखिर शिखर पर साहित्य सम्मलेन का दिन भी आ गया। नेता जी मुस्कराते हुए पहाड़ की ओर जाने वाले मार्ग की सीढ़ियों पर बड़ी द्रुत गति से चढ़ रहे थे। पीछे-पीछे लेखक जी थे। अचानक नेता जी का पैर लचक गया और वह धड़ाम से गिर गए। पांव की हड्डी में गहरी चोट की आशंका जताई गई!

इस घटना को मीडिया ने अपने कैमरों में कैद कर लिया। नेताजी का धड़ाम से तीन-चार सीढ़ियों से गिरना

सुर्खियाँ बन गया। वैसे गिरना उनके लिए कोई नई बात नहीं थी! इस घटना से सख्त नाराज उनके निजी सचिव ने लेखक जी को आड़े हाथों लेते हुए हड़काया, 'आप पीछे-पीछे कर क्या रहे थे? आप लोग दावा तो यही करते हैं कि, राजनीति जब-जब लड़खड़ाती है, साहित्य उसे ताकत देता है। जब आप साथ थे तब नेता जी गिरे तो गिरे कैसे?'

निरुत्तर लेखक जी हाथ जोड़े खड़े थे। तभी पास खड़े एक सज्जन ने लेखक जी की ओर देखकर चुटकी लेते हुए कहा, 'आज के साहित्य में वह ताकत नहीं रही है! विभिन्न विमर्शों, लिखने की होड़ और खेमेबाजी में बंटकर साहित्य अपनी ताकत खो चुका है! एक निशक्त कैसे किसी सशक्त को ताकत देता?'



### सर्जकों तथा पाठकों से

- 'समकालीन अभिव्यक्ति' एक साहित्यिक आन्दोलन है। इसमें आपकी सक्रिय भागीदारी निवेदित एवं अपेक्षित है।
- पत्रिका में प्रकाशनार्थ रचनाओं का स्वागत है। कथा, व्यंग्य, लेख, गीत, गज़ल, कविता, रिपोर्टाज आदि किसी भी विधा में रचना भेजें।
- रचना कागज के एक तरफ पर्याप्त हाशिया छोड़कर सुस्पष्ट अक्षरों में लिखित या टंकित होनी चाहिए।
- अस्वीकृत रचनाएं नष्ट कर दी जाती हैं, अतः उनकी एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखें।
- स्वीकृत रचनाओं की सूचना सामान्यतः फोन पर एक माह के अन्दर दे दी जाएगी।
- रचना के अन्त में यह प्रमाणपत्र अवश्य दें कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित है।
- फोटो/छाया चित्र के पीछे नाम अवश्य लिखें।
- रचनाएं ई-मेल से भी स्वीकार की जाती हैं। ई-मेल से रचनाएँ केवल कृतिदेव या युनिकोड/मंगल में भेजें।
- समकालीन अभिव्यक्ति में अन्यत्र प्रकाशित रचनाएँ स्वीकार नहीं की जाती हैं। जब तक रचना पर निर्णय नहीं हो जाता, तब तक उसे प्रकाशनार्थ अन्यत्र न भेजें।
- प्रकाशित रचनाओं पर किसी प्रकार के मानदेय की व्यवस्था नहीं है।
- पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के सम्बन्ध में सार्थक आलोचना/प्रतिक्रिया का स्वागत है।

## रामदरश मिश्र के मुक्तक (स्व. सरस्वती जी की पुण्य स्मृति में)



1.

दर्द तन-मन में भरा है पर कहा जाता नहीं  
दर्द का यह मौन आँखों से सहा जाता नहीं  
दूर हो जाता हूँ मैं घबरा के दो दिन के लिए  
पर तुम्हारे बिना बाहर तो रहा जाता नहीं।

2.

हाय, जिस देवी ने सबको सदा अपनापन दिया  
बेसहारों को सहारा भूख को भोजन दिया  
स्वर दिया बेचैन चुप्पी को, उसे हे ईश क्यों  
सफर के अन्तिम चरण में, मूक यह क्रंदन दिया।

3.

हे महा महिमा तुम्हारा बदन अब तो सो गया है  
ज्योति-सा जीवन तुम्हारा घने तम में खो गया है  
हो गई हो मुक्त अब तो यातनाओं के जुलुम से  
किन्तु जो तुमने सहा वह दर्द मेरा हो गया है।

4.

ज़िन्दगी तो इक सफर है सत्य है, यह मानता हूँ  
आज जो आया है कल जायेगा यह भी जानता हूँ  
पर सखे, रोते हुए इस बावरे मन का करूँ क्या  
गेह की हर वस्तु में रह-रह तुम्हें पहचानता हूँ।

5.

तुम प्रिया थीं, प्रेयसी थीं, मेरी प्यारी सहचरी थीं  
पूरे घर के वास्ते तुम त्याग, ममता से भरी थीं  
मेरे सुख-दुःख को बना लेती रहीं अपना सदा ही  
दीन-दुखियों के लिए सहयोग की प्रिय निझरी थीं

6.

तुम जहाँ जिस रूप में हो खुश रहो मेरे सखे  
पुण्य कर्मों से मिले सुख में बहो मेरे सखे  
पुनर्जीवन सत्य है यदि फिर मिलें हम, चाह है  
कभी मेरे स्वप्न में आ कुछ कहो मेरे सखे।

7.

लोग रोते हैं जनम भर आयु लगती शूल सी  
मिल गई यदि संगिनी कंटक सदृश प्रतिकूल सी  
पर सखे मैं रो रहा हूँ तुम्हारे जाने के बाद  
मेरे वीराने चमन में तुम खिली थी फूल-सी।

8.

सबकुछ तो है इस प्रिय घर में गहरा अपनापन बसता है  
मुझको सुख दे दे कर हे प्रिय पूरे घर का मन हँसता है  
रह रह आते हैं प्रियजन लेकर कुछ गुंजन-सा मेरे हित  
पर हे प्रिय सहचरी तुम्हारे बिना अकेलापन डँसता है।

9.

हे प्यारी सहचरी दिवसभर इन-उनके संग हो लेता हूँ  
कभी देर तक अपनी रचनाओं में खुद को खो लेता हूँ  
कभी टहलता हूँ कमरे से बाहर जाकर खुली धूप में  
पर जब होता हूँ तनहा तब चुपके-चुपके रो लेता हूँ।

### सम्पर्क:

बी 24, ब्रह्मा अपार्टमेंट, सेक्टर 7, प्लॉट 7,  
द्वारका, नई दिल्ली - 110075



## अविनाश भारती की दो गज़लें



1

नई पीढ़ियों को बताना ये भाई,  
किसी का न होता जमाना ये भाई।

दिलों से मोहब्बत कभी कम न होगी,  
भले अपना बदले ठिकाना ये भाई।

दरिंदो से कैसे बचे घर की बेटी,  
उसे सबसे पहले सिखाना ये भाई।

हँसाने का तेरा तरीका अजब है,  
बुरे वक्त में गुदगुदाना ये भाई।

चुभे दिल में कितना बताना है मुश्किल,  
मदद करके तेरा जताना ये भाई।

ऐ 'अविनाश' मुझको भुला दे तू लेकिन,  
रखेगा दिलों में जमाना ये भाई।

2.

निर्दोष कैद में फँसा दोषी फरार है,  
मुझको बता दे ऐ खुदा कैसा दयार है।

अब दोस्ती के नाम का बदला रिवाज है,  
ऊपर से प्यार दिख रहा मन में कटार है।

जुल्म-ओ-सितम के दौर में सबको पता रहे,  
घर में बना जो शेर है बाहर सियार है।

बेकार हो गया हूँ मैं कहते हैं लोग भी,  
जो शायरी का शौक ये सर पे सवार है।

लाचार आदमी कहाँ जाए करे तो क्या,  
जाए जिधर भी वो वहाँ लम्बी कतार है।

## सम्पर्क:

ग्राम व. पोस्ट - अहियापुर  
जिला - मुजफ्फरपुर, बिहार (843125)  
मो. - 9931330923, 9423625548

समकालीन अभिव्यक्ति

## संजीव प्रभाकर की दो गज़लें



1

जितना था इख्तियार किया, क्या बुरा किया,  
हर बार इंतजार किया, क्या बुरा किया?

ताउम्र मेरे साथ जो करता रहा फरेब,  
उसका भी ऐतबार किया, क्या बुरा किया?

मेरे जो काम आ न सका वक्त पर कभी,  
उस पर भी सब निसार किया, क्या बुरा किया?

उसकी हरेक शर्त कुबूली बगैर शर्त,  
जितनी दफा करार किया, क्या बुरा किया?

इस वास्ते फकत कि मैं कुछ कर सकूँ मुफीद  
क्या-क्या न मैंने यार किया, क्या बुरा किया?

मैं काम मुकम्मल न कर सका कोई मगर,  
शिद्दत से बार-बार किया, क्या बुरा किया?

2

दूर बहुत था गाँव जहाँ तक आयी नहीं तरक्की थी,  
कच्चे घर में संबंधों की गाँठ मगर क्या पक्की थी !

कुछ घर थे, थोड़े रस्ते थे, इक शाला, इक मंदिर था,  
पुक-पुक कर के शोर मचाती इक आटे की चक्की थी।

रोज लड़ाई होती मेरी, मान-मनव्वल चलता था,  
मैं भी आखिर क्या करता वो पगली थोड़ी शक्की थी।

खड़ी सभी फसलें बह जातीं हाथ नहीं कुछ भी आता,  
कभी-कभी घर आ जाती कुछ कच्ची-पक्की मक्की थी।

डूब गया वो गाँव जहाँ पर सूख गया था चापाकल,  
हाकिम सब चुपचाप खड़े थे जनता हक्की-बक्की थी।

## सम्पर्क:

एस-4, सुरभि, सेक्टर 29, गाँधी नगर, 382021 (गुजरात)  
मो. : 9427775696

अक्टूबर-दिसम्बर, 2023

## ओम धीरज के तीन नवगीत



### सभी पक्ष हैं बहरे

धूप खिली, खिल-खिला उठे हैं,  
शीत सताए चेहरे,  
लिखे इबारत गहरे!

सुबह देर तक शाम जल्द ही  
पसरा था सन्नाटा,  
छेड़-छाड़ पर गलन, पवन को  
मार रही मृदु चाँटा,  
इश्क-मुश्क में नीम-स्याह पर  
उभरे हर्फ सुनहरे!

व्याकुल खग-मृग संग मनुष भी  
जहाँ-तहाँ थे दुबके,  
आकुल क्रीडा-कलरव को शिशु  
माँ की गोदी सुबके,  
अनबोलों के बोल खोल दें  
सातों ताले पहरे!

शीत-लहर, मँहगाई, विपदा  
सब गरीब के हिस्से,  
पार्टी-पिकनिक, हीटर-स्वेटर  
कहें अमीरी किस्से,

जन-गण के कल्याण सिद्धि के  
सभी पक्ष हैं बहरे!

ओढ़न-छाड़न, बसन बाँटकर  
दान-पुण्य दिखलाएँ,  
सस्ते कम्बल उत्सवपूर्वक  
फोटो लोग छपाएँ,  
सवेदन की मरी चेतना  
सिर्फ दिखाऊ खबरे!

### जरा झाँक कर गिरेबान में

जरा झाँक कर गिरेबान में  
देखो भाई जी!

सच्चाई के नाम झूठ भी  
कितना लिखते हो,  
जैसे हो क्या, वैसे ही तुम  
बाहर दिखते हो?  
नारी की आजादी माँगो  
घर की कैद रखो,  
अपने पूरे 'संस्थान' में  
देखो भाई जी!

घर में भेद जाति का रखते  
बाहर समता का,  
शब्दों में आँसू ढाले हो  
झूठी ममता का,

है अतीत का चढ़ा मुलम्मा  
कितना रगड़ोगे?  
भूत छोड़कर वर्तमान में  
देखो भाई जी!

### धान रोपती महिलाएँ

धान रोपती महिलाएँ ही  
धान काटतीं भी,  
फिर भी मँछू गरज रहीं क्यों  
छूँछे बादल-सा ?

पाँव पैजनी, आँगुर बिछिया  
हाथ बँधे कँगना,  
छन-छन, छिन-छिन याद दिलाए  
दूधमुँही अँगना,  
दादी की गारी ही छोरी  
लोरी समझ रही,  
काका-दाऊ ताश फेंटते  
झूमें मादल-सा।

टीसों कूल्हे आकर फूँके  
धुँधुआते चूल्हे,  
स्वाद हेरते, बीन टेरेते  
दिनभर बैठ निठल्ले,

दूध-पूत का सारा जिम्मा  
इनके माथ मढ़े,  
वो तो हैं बस मात्र डिटौना  
पारे काजल-सा !

### सम्पर्क:

अभिज्ञान शाकुन्तलम्  
सा 14/96-55, सारंगनाथ कॉलोनी  
सारनाथ, वाराणसी-221007  
उत्तर प्रदेश  
मो. 9415270194



## सुभाष राय की कविताएँ

जिएँगे-मरेगे अपने सपनों की  
सुबह के लिए

तुम्हारे कहने से नहीं मान लेंगे  
कि महामारी से ही मर रहे तमाम लोग  
आदमियों से मिलना-जुलना  
बतियाना खतरनाक है  
प्रिय के साथ पार्क में बैठना  
नदी किनारे टहलना मना है  
हाथों में हाथ डाले बढ़ेंगे गाते हुए  
मानवता और शहादत के गीत  
जिएँगे-मरेगे अपने सपनों में देखे  
प्रेम के लिए

तुम्हारे कहने से नहीं मान लेंगे  
कि भूख से अब नहीं मर रहा कोई  
आत्महत्या के लिए मजबूर नहीं  
कोई जवान, मजूर, किसान  
बच्चों को दूध मिल रहा भरपूर  
माँएँ खिलखिला रहीं अपने शिशुओं के साथ  
सब अमन-चैन है, बस्तियां गुलजार हैं  
मुस्कान ही अब जनता का गान है  
जिएँगे-मरेगे काले बादलों को चीरकर  
सूरज की गवाही दर्ज करने के लिए

तुम्हारे कहने से नहीं मान लेंगे  
कि सब भला-चंगा है, ठीक-ठाक है  
तुम्हारे ठीक-ठाक के माने बहुत खौफनाक है  
तुम्हारे कहने से नहीं छोड़ देंगे पूछना सवाल  
नहीं बैठेंगे हाथ पर हाथ धरे पांच साल  
जिएँगे-मरेगे गुलामी की हथकड़ियां  
टूटने की उम्मीद के लिए।

### गुफाएँ

घरों में घर नहीं हैं, गुफाएँ हैं  
पत्थरों से बंद किए गए हैं

### शोर

लारवों शंख एक साथ बज रहे हैं  
हमें सिर्फ शोर सुनाई पड़ रहा है  
हमने जब-जब शोर सुना  
शहर में दंगा हुआ  
किसी की लिचिंग हुई  
कोई औरत प्रेम करने के अपराध में मारी गयी  
वे कह रहे हैं शंख बजने का मतलब समझो  
हम शोर का अर्थ समझने  
की कोशिश कर रहे हैं

वर्तमान संदिग्ध घोषित कर दिया गया है  
जहां-जहां बचा रह गया है इतिहास  
वहां-वहां भीड़ जमा है  
फावड़े, कुल्हाड़ियां लिए  
कोई दीवाल पर चढ़ गया है  
कोई गुम्बद पर  
कोई खोद रहा है फर्श  
सब के सब किसी भगत के  
सपने में आयी मूर्ति की तलाश कर रहे हैं  
वे कह रहे हैं इतिहास बदलने का  
सही वक्त आ गया है।

### तुम्हारे कहने से नहीं मान लेंगे

तुम्हारे कहने से नहीं मान लेंगे  
कि आधी रात को ताल में खिला है  
श्वेत कमल  
घोसलों से निकल आई हैं चिड़ियाँ  
गा रहीं हैं पौ फटने का स्वागत गीत

भीतर जाने के रास्ते  
तलवारें चमक रही हैं  
तरकश और जिरह-बख्तर लटके हैं  
लोहे के टोप बंदूकों की नोक पर टंगे  
हुए हैं

कुछ लोग अभ्यास कर रहे हैं  
सटीक निशाना लगाने का

ज्यादातर आदमियों की शक्लें बंदरों  
जैसी हैं  
वे चारों पैरों पर भागते-भागते कई बार  
दो पैरों पर चलने लगते हैं  
कुछ ने दो पांवों पर दौड़ना सीख  
लिया है

सबके अलग-अलग समूह हैं  
सभी एक दूसरे के खून के प्यासे हैं

जिनकी शक्लें आदमियों जैसी दिखती हैं  
वे भी पूरे आदमी नहीं हो पाए हैं  
वे दूसरे समूह के किसी भी व्यक्ति  
का शिकार कर सकते हैं

किसी को ठीक से पता नहीं है  
कि कहां-कहां हैं गुफाएँ  
किसमें कौन छिपा बैठा है  
चलते-चलते अचानक मिट्टी धँस  
जाती है  
और कोई भी किसी गुफा के तल में  
गिरकर किसी का भोजन बन जाता है

हवा में बीमारियाँ उड़ रही हैं  
सड़ती हुई देह की दुर्गंध भी आ रही है  
शिकारी घूम रहे हैं चारों ओर  
थोड़ी भी असावधानी में मारे जाने का  
डर है

किसी को नहीं पता कि उसकी  
शक्ल कैसी है, वह कैसा दिखता है

बहुतों ने अपनी शक्ल बहुत दिनों से  
नहीं देखीं  
कोई किसी को नहीं पहचानता

एक भेड़िये ने आदमी की पोशाकें  
पहन ली हैं  
उसने अपने जैसे तमाम लोग जुटा  
लिये हैं  
वह बोलते-बोलते गुर्राने लगता है  
वह गुर्राना है तो उसके सिपाही भी  
गुर्राने लगते हैं

उसकी भाषा समझ में नहीं आती  
लेकिन उसका गुर्राना समझ में आता है  
वह जब भी गुर्राना है  
लोग बेवजह मारे जाते हैं  
बस्तियों में दुर्गंध और बढ़ जाती है।

### प्रश्नों का क्या करें

पहले हम जानवर थे  
प्रश्न ने हमें मनुष्य बनाया  
प्रश्न से ही हिंसा और बर्बरता को  
अस्वीकार करने का साहस पैदा हुआ  
प्रश्न से ही वेद, कतेब और  
बाइबिल लिखे गये  
और प्रश्न से ही वे सब  
अस्वीकार कर दिये गये

प्रश्न ने अन्याय पर चोट की  
प्रश्न ने ही भयवश राजा का हुक्म  
मानने की प्रथा को चुनौती दी  
प्रश्न से ही असहमत को  
सूली पर चढ़ाने की  
मनमानी पर लगाम लगी

लेकिन अब प्रश्नों पर संकट है  
प्रश्न कौद किये जा रहे हैं  
प्रश्नों को मार देने की तैयारी है

एक आदमी अपने मन की  
बात कर रहा है और कह रहा है  
इसी में सारे उत्तर हैं

प्रश्न करने वालों से ही  
प्रश्न किये जा रहे हैं कि उनके  
प्रश्नों के पीछे क्या साजिश है  
ज्यादा प्रश्न करने वालों पर दंगा कराने  
का इलजाम लगाया जा रहा है

प्रश्न है कि अब प्रश्नों का क्या करें  
प्रश्न नहीं किये तो मनुष्य नहीं रह जाएँगे  
और प्रश्न किये तो मार दिये जाएँगे।

### मैं रूढ़ंगी तोय

मैं उस मिट्टी का बना हूँ  
जो टूटती नहीं, जिसमें लोहा बजता है  
जिसकी टक्कर से फूटती हैं  
चिनगारियाँ

मैं उस मिट्टी का बना हूँ  
जो खिलती, महकती है फूलों में  
जिससे कोई भी मूर्ति बनायी जा  
सकती है  
जिससे मरम्मत की जा सकती है  
इतिहास की

मैं उस मिट्टी का बना हूँ  
जिसकी मिट्टी पलीद नहीं हो सकती  
जो कुम्हार से कहती है कि तू मुझे  
क्या रोदेगा  
एक दिन आयेगा, जब तू मेरे हाथों  
रोँदा जाएगा

### सम्पर्क :

‘जनसदेश टाइम्स’ लखनऊ में प्रधान  
संपादक के रूप में कार्यरत,  
मो. - 9455081894

## शिव कुशवाहा की कविताएँ

धरती पर उतरता हुआ चांद  
आकाश के बीचो-बीच  
चांद का उतरता हुआ रंग  
रश्मि आभा से  
परिणत हो जाता है  
गहरे स्याह रंग में.

झिलमिलाते हुए तारे  
मद्धिम रोशनी में  
अंतिम किरण की तरह  
नहीं छोड़ना चाहते  
आकाश का स्थाई कोना  
गहराती हुई रात  
तब्दील हो जाती है एक युग में.

चांद और तारों के ठीक नीचे  
जागते हुए कलमकार  
बनाते हैं कल्पना की तूलिका से  
बिम्बों का सहज छविचित्र

जैसे रात अपनी कालिमा में डूबकर  
उतर आती है धरती पर  
वैसे ही कलमकार  
गढ़ता है नए प्रतिमान  
समय की बालुका पर चलकर  
वह पहुंच जाता है  
चांद की सतह के ऊपर,

धरती पर उतरता हुआ चांद  
लेकर आता है  
अपने साथ अनेक भाव  
जिनमें डूबता-इतराता है  
हमारा पूरा परिवेश...



कंधों पर बैठे हुए लोग  
लीक की सीध पर  
कुछ धुंधला-सा अक्स उभर आने पर  
दीखती है कविता मुझे  
कंधो पर लटकाए  
कुछ अनकहे से खुरदरे शब्द  
जो उधेड़ देते हैं  
मन के भीतर बसे  
अभिव्यक्ति के कोरे कैनवास को..

जहां चलना ही जीवन की  
न खत्म होने वाली चिरंतन क्रिया है  
इसके बनिस्बत कि दुनिया का  
हर आदमी यही सोचता है  
कि कंधो पर बैठकर लोग निकल जाते  
हैं आगे  
छोड़ देते हैं अपना अवलम्ब.

कंधों पर बैठे हुए लोग  
जरूरी नहीं  
कि ढो रहे हों इस नाजायज समय को  
लड़खड़ाते कदमों के पदचाप  
सुनते हुए  
वे कंधों से उतरकर  
थाम लेते हैं  
मजबूत इरादों के साथ गिरते हुए शिखर..।

सम्पर्क

शिव कुशवाहा C/O श्रीमती राममूर्ति कुशवाहा  
शिव कालोनी, टापा कला, जलेसर रोड, फिरोजाबाद, (उ. प्र.)  
सम्पर्क - 07500219405 E-mail:shivkushwaha.16@gmail.com

बरगदी छाया से दूर  
पुराने बरगद  
नहीं पनपने देते नए पौधें  
जहां तक छाया रहती है  
वहां नहीं उगने देते नई किल्लियां  
उसकी आत्महंता जड़ें  
सोख लेती हैं धरती की उर्वरा शक्ति  
जहां कुछ उग आने की संभावना के इतर  
उगने से पहले ही  
सूख जाती हैं नवकोंपलें.

फैलती हुई जड़ों की परिधि  
विस्तार लेती हुई उसकी शाखाएँ  
कद ऊँचे से और अधिक ऊँचा होता हुआ  
जहां वह नहीं देखता  
अपने आस-पास  
छोट-छोटे नव विकसित कोपलें  
जो हरियाना चाहती हैं  
लेकिन बरगद  
आखिरी दम तक  
सोख ही लेते हैं उनकी प्राण वायु.

बरगदी छाया से दूर  
उगते हुए नये पौधे  
धीरे-धीरे उठ रहे हैं ऊपर  
अपने आस-पास उग आये नए कोपलों को  
बांटते है उर्वरा शक्ति,  
धरती में पनपती हुई अनेक तरु शिखाएँ  
घटित होते हुए समय की असलियत  
पहचान ही लेती हैं  
कि बरगदी छाया  
आत्ममुग्ध बरगद की एक स्थिति है..।

## राजेश्वर वशिष्ठ की कविताएँ



### प्रेमपत्र

मैंने एक प्रेमपत्र लिखा  
आवारा बहती हवा पर  
हवा के कदम लड़खड़ाए  
और हवा ने अपनी दिशा बदल ली

मैंने एक प्रेमपत्र लिखा  
आसमान में लहराती लाल पतंग पर  
पतंग कटी और एक बच्चे ने उसे  
अपने घर की दीवार पर लटका दिया

मैंने एक प्रेमपत्र लिखा  
कल कल बहती  
सुरमयी नदी के मीठे जल पर  
और नदी जाकर समुद्र में समा गई

मैंने एक प्रेमपत्र लिखा  
नागचम्या के महकते पुष्प पर  
और चिड़िया को दे दिया  
चिड़िया उसे लेकर इधर-उधर उड़ी  
और किसी घने जंगल में छिप गई

मैंने एक प्रेमपत्र लिखा  
बादलों से घिरे आसमान के  
शामियाने पर  
और कड़कती बिजली ने  
उसे पल भर में भस्म कर दिया

मैंने हार कर  
अंतिम प्रेमपत्र गर्म आँसुओं से  
अपनी आत्मा पर लिखा  
और उसे अपने दुःख के हवाले कर दिया

सुनेत्र,  
यह वही पत्र है  
जिसे अब तुम पढ़ रही हो!

मुझे नहीं पता था  
प्रेम हमारे बीच नहीं  
हमारे दुःखों के बीच है।

### जीवन का प्रेमशास्त्र

रोज हवा की तरह आता हूँ तुम्हारे  
दरवाजे तक  
साँस रोक कर ठहरता हूँ क्षण भर  
पर दरवाजा थपथपाता नहीं।  
हवा के पास भाव होते हैं  
शब्दों में गुथी भाषा नहीं होती।

अधजगी सुबह में तुम्हें देखता हूँ चैन  
से सोते हुए  
माथे को चूमता हूँ बहुत धीरे से,  
डरता हूँ टूट न जाए भोर का स्वप्न।  
सूर्योदय से पहले ही मेरी आँखों में  
उतर आती है  
प्राची में बिखरी लालिमा।

### संपर्क :

1101, टॉवर-4, सुशांत एस्टेट,  
सैक्टर-52, गुरुग्राम - 122003  
E-mail: rajeshwar58@  
gmail.com  
मोबाइल :  
+91-9674 386400,  
+91-8840081836

खिड़कियों की दरारों से डरते हुए  
नागरिक की तरह  
झाँकता हूँ सड़क की ओर;  
पता नहीं शहर में कब तक गश्त  
लगाएगी सेना।  
युद्ध और अशांति के काल खंड में  
हमारा विश्वास  
जीवन से अधिक मृत्यु पर होता है।

आओ चलें उस सुदूर टापू पर  
जहाँ चिड़ियों की भाषा जानती हो  
हवा,  
पेड़ की शाखाओं के बीच से झुक  
कर  
सूरज चूम ले तुम्हारा भाल  
और युद्ध का नाम भी न जानते हों  
लोग।

सुनेत्र,  
हर युग के समापन के बाद  
हमें ही लिखना होगा  
जीवन का प्रेमशास्त्र!

### टेस्टोस्टेरोन

जब हम दूर होते हैं  
हमारे बीच हमारे शब्द लड़ते हैं।

असल में हम प्रेम करना तो जानते हैं  
पर हमें उसकी पारिभाषिक शब्दावली  
नहीं आती।  
आती भी कैसे?  
वह स्त्री और पुरुष के लिए अलग  
जो है।

स्त्री-पुरुष का सारा जुड़ाव उनके  
शरीरों के बीच है,  
स्पर्श और गंध के बीच है।

जब वे साथ होते हैं उनका अहम  
दो जंगली पशुओं के बीच  
झाड़ियों की तरह पिसता रहता है।

तब उनकी भाषा  
बहुत प्राकृतिक और नैसर्गिक होती  
है।  
स्वरो से आच्छादित व्यंजनों से शून्य।  
उनकी ध्वनियों को  
शब्दों में लिखना आसान नहीं होता।

जब वे दूर होते हैं  
उनके शब्द अतृप्त शरीरों के  
मस्तिष्कों की  
अंगीठियों में  
कोयलों की तरह सुलगते हैं।

सुनेत्र,  
शब्दों में चाहे अर्थ होते हों  
टेस्टोस्टेरोन नहीं होता।  
इसलिए लम्बे समय तक दूर रह कर  
सिर्फ झगड़ा होता है,  
प्रेम नहीं होता।

### प्रेम मौन में जीता है

मैंने अपने शब्दों पर बहुत विश्वास  
किया  
उतना ही जितना कोई सैनिक अपनी  
बंदूक पर करता है  
कोई पेंटर अपनी ब्रश पर करता है  
या कोई कुम्हार अपनी उँगलियों पर  
करता है।

जो मैंने लिखा उसने वही पढ़ा  
पर उसके लिए अर्थ बदल गया।  
सैनिक ने आत्मविश्वास के साथ

भागते शत्रु पर गोली चलाई पर  
निशाना चूक गया।  
पेंटर घंटों ब्रश चलाता रहा  
पर हँसती हुई लड़की के गालों पर  
गड़हे नहीं पड़े।  
कुम्हार का बनाया घड़ा  
उसकी प्रेमिका को पसंद नहीं आया।

कवि ने मान लिया -  
अब प्रेम को कविता लिख कर नहीं  
बचाया जा सकता।  
सैनिक को भरोसा हो गया -  
बंदूक पर भरोसा शांति-काल में ही  
किया जा सकता है।  
पेंटर ने अपनी रंग सनी उँगलिया दाढ़ी  
से पोंछते हुए समझा -  
उस लड़की की हँसी को चित्र में कैद  
नहीं किया जा सकता।  
कुम्हार ने अपने घड़ों को हाथों-हाथ  
बिकते देखा तो जाना  
प्रेमिका की जरूरतें किसी घड़े से  
भिन्न हैं।

अब हम विरह के गलियारे में  
स्मृतियों की स्वर्ण-मंजूषा खोल कर  
बैठे हैं,  
जिसमें वह अनुभव है  
जिसे हमने वर्षों प्रेम से सींचा है।

सुनेत्र,  
प्रेम शब्दों में नहीं,  
मौन में जीता है!







नटराज मंदिर चिदंबरम में नृत्यरत शिव का प्राचीन भित्ति चित्र छाया साभार



★ अनिल डबरा

के रूप में जो लोकप्रियता उन्हें मिली है वह इन सब में बढ़ कर है। शिव के इस चिरपरिचित स्वरूप को आज दुनियाभर में आश्चर्य और प्रशंसा की नजरो से देखा जाता है।

नृत्य के अधिष्ठाता हैं महादेव शिव। उनकी मनोरम नृत्य मुद्राओं के शिल्पांकन को कतिपय शासकों ने भरपूर प्रश्रय प्रदान किया। राज्य से मिले उत्साह और समर्थन के चलते चोल, चालुक्य, चंदेल, परमार आदि कलाओं में नटराज की मूर्तियों का निर्माण इतनी अधिक संख्या में हुआ कि महानट शिव देश के बहुमान्य प्रतीक बन गए। विभिन्न पौराणिक स्वरूपों के अनुरूप नटराज की कल्पना कई प्रकार से की गई है। चिदम्बरम् के नटराज मंदिर के पूर्वी और पश्चिमी गोपुरम् में नृत्य की एक सौ आठ मुद्राएं उत्कीर्ण हैं। तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर की ऊपरी मंजिल की कला दीर्घा में नृत्यमग्न शिव की एक सौ आठ विविध मुद्रायें अचंभित कर देती हैं। इनके अतिरिक्त त्रिचिरापल्ली, गंगकोण्ड चोलपुरम्, कुम्भकोणम्, दारासुरम्,

## भारतीय शिल्प की आत्यांतिक कल्पना : नटराज

भारतीय मूर्तिशिल्प में नटराज शिव की एक ऐसी आत्यांतिक कल्पना है जो हिन्दू दर्शन और सौन्दर्य चेतना के उच्चतम मानदंडों को रूपांकित करती है। सृष्टि के नियामक और सहायक के रूप में वैसे तो शिव के असंख्य स्वरूपों की कल्पना की गई है लेकिन नटराज





चोल कालीन नटराज छाया साभार

कावेरी पक्कम, पडुकोट्टई, इरोडे, कोयम्बटूर, बादामी, एलोरा और मदुरई आदि स्थानों के प्राचीन मंदिरों में भी महानटेश शिव के मनोरम स्वरूपों की झलक देखी जा सकती है।

नटराज की विभिन्न भाव-भंगिमाओं की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति कांस्य मूर्तियों में मिलती है। 'मधूच्छिष्ट' विधान से निर्मित इन मूर्तियों में मानवीय शरीर की बनावट पूरी तरह जीवन्त, सजीव और भावों की अभिव्यक्ति में पूरी तरह सक्षम है। इस विधि से मूर्तियों के निर्माण की परम्परा सैंधव सभ्यता के दौर में ही शुरू हो गयी थी किंतु बहुतायत में इसके प्रचलन के प्रमाण चोल काल से मिलने शुरू होते हैं। धातु मूर्तियों में चोल मूर्तियाँ निःसंदेह सर्वोत्कृष्ट हैं। हालांकि इन मूर्तियों में सामान्यतः समकालीन प्रस्तर मूर्तियों की ही विशेषताएँ प्रदर्शित हुई हैं लेकिन उनमें कला के मृदुल तत्व अधिक मुखर हैं। चोलकालीन कांस्य

मूर्ति शिल्प के बारे में किसी ने ठीक ही कहा है कि संगीत के सुरों और इंद्रधनुष के रंगों का जायजा अगर आकृति के रूप में करना हो तो कांसे की इन मूर्तियों से बेहतर माध्यम शायद कोई दूसरा और नहीं होगा।

नृत्य शिव की श्रेष्ठता और महादेवत्व का भी प्रतीक है। शिव प्रदोषस्तोत्र के अनुसार नटराज शिव कैलाश पर्वत पर प्रतिदिन अपना नृत्य करते हैं। नृत्य के इस समारोह में तीनों लोकों से देव दानव और गण शामिल होते हैं। देवराज इन्द्र बांसुरी, ब्रह्मा मंजीरा और सरस्वती वीणा बजाती हैं। लक्ष्मी गीत गाती हैं और विष्णु मृदंग बजाते हैं। ऐसे खुशनुमा माहौल में नटराज शिव जब अपना नृत्य शुरू करते हैं तो समस्त ब्रह्मांड शिवमय हो जाता है।

शिव का सबसे चर्चित नृत्य है तांडव। कहते हैं क्रुद्ध पार्वती को मनाने के लिए शिव ने तांडव



बृहदेश्वर मंदिर की बाह्य भित्ति पर चोल कालीन नटराज छाया साभार



पेरिस के संग्रहालय में अष्टधातु के नटराज छाया साभार

नृत्य किया था। ऐसी भी मान्यता है कि सृष्टि के संहार के समय शिव इसी विराट नृत्य में लीन हो जाते हैं। पौराणिक ग्रन्थों में शिव के इस प्रलयकारी नृत्य की विस्तार से चर्चा की गई है। कहा गया है कि तांडवित शिव जब कैलाश पर्वत पर अपना नृत्य कर रहे थे तो सृष्टि नष्ट हो रही थी। सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र आपस में टकराकर चूर-चूर हो रहे थे। हिमालय के पर्वत शृंग टूट कर शून्य में नए ग्रहों, उपग्रहों का रूप ले रहे थे और समुद्र के जल की विकराल लहरें पृथ्वी को चारों ओर से जलमग्न कर रही थी। आमतौर पर शिव के इस नृत्य को विनाश, प्रलय अथवा संहार का नृत्य माना जाता है लेकिन तांडव के संहार से ही सृजन के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं और एक नई सृष्टि का जन्म होता है।

तांडव में मग्न शिव मूर्तियों के गहन प्रतीकात्मक अर्थ हैं। अपस्मार नामक दैत्य की पीठ पर शिव का नृत्य करना अज्ञानता और अंधकार



होयसल कला में नटराज छाया साभार

पर उनके नियंत्रण को व्यक्त करता है। नटराज की प्रतिमाओं में शिव बाएं कान में स्त्री का आभूषण और दाहिने कान में पुरुष का कुंडल पहने हुए प्रदर्शित किए जाते हैं। यह शिव का अर्द्धनारीश्वर स्वरूप है जो शिव एवं शक्ति के अविच्छिन्न संबंध को रूपांकित करता है। नटराज के रूप में शिव की दो से लेकर बारह भुजाओं वाली मूर्तियां मिलती हैं लेकिन उनका चतुर्भुजी स्वरूप सर्वाधिक लोकप्रिय है। इन प्रतिमाओं में शिव का बायां पैर नृत्य मुद्रा में उठा होता है और दो हाथों से नृत्य की विभिन्न मुद्राएं व्यक्त होती हैं। पौराणिक स्वरूपों के अनुरूप बहुभुजी मूर्तियों में वे त्रिशूल, डमरू, सर्प, अग्नि, वीणा, परशु, खड्ग, खप्पर, खेटक और अक्षमाला जैसी वस्तुओं को धारण किए रहते हैं। ज्वाला के समान बिरबरे हुए केश और

सम्पूर्ण शरीर को परिवृत्त करता हुआ अग्नि शिखाओं से युक्त प्रभामंडल भी शिव के विराट रौद्र स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।

तांडव नृत्य के मुख्यतः तीन स्वरूप बताए गए हैं उचंड, प्रचंड और तमस। विद्वानों ने इन्हें अपनी तरह से व्याख्यायित किया और नर्तक नृत्यांगनाओं ने इसके विनीत रूप को ग्रहण किया है। भरतनाट्यम, ओडीसी, कचिपुड़ी और कथक जैसे नृत्यों में भी तांडव की कतिपय विशेषताएं अपनायी गई हैं।

नटराज की कांस्य प्रतिमाओं का निर्माण दैनिक जीवन की सजावट और धार्मिक अनुष्ठानों के लिए होता रहा है। इनके निर्माण की एक खास तकनीक है जिसे किटश के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम मुलायम मोम की प्रतिमा

बनाई जाती है और उसके चारों ओर गीली मिट्टी थपेड़ कर सुखा ली जाती है। मिट्टी के इस सांचे में एक सुराग छोड़ दिया जाता है जिससे पिघली हुई धातु भरते समय मोम पिघल कर बाहर निकल आता है। धातु के जमने पर वह मूर्ति का आकार ग्रहण कर लेती है। तत्पश्चात् मिट्टी के सांचे को तोड़कर अलग कर लिया जाता है और चमचमाती धातु की प्रतिमा बनकर तैयार हो जाती है।

चोल साम्राज्य को समाप्त हुए सात सौ साल बीत चुके हैं लेकिन धातु मूर्तिकला को उनकी यह देन आज भी सजीवता के साथ जीवित है। तमिलनाडु और कर्नाटक के अनेक शहरों में सदियों से कांसे की मूर्तियां गढ़ी जा रही हैं। हाल ही में जी 20 शिखर सम्मेलन के दौरान प्रगति मैदान के भारत मंडप के प्रवेश द्वार पर नटराज की अष्टधातु निर्मित विशालकाय प्रतिमा को स्थापित किया गया। मधु तकनीक से निर्मित करीब अट्ठारह टन वजन की और आठ मीटर ऊँची इस मूर्ति का निर्माण चोल परम्परा के मूर्तिकारों द्वारा किया गया। यह देश की सबसे ऊँची नटराज प्रतिमाओं में से एक है। वैसे नटराज की सबसे ऊँची प्रतिमा मध्य प्रदेश में विदिशा जिले के नीलकण्ठेश्वर महादेव मंदिर के निकट मौजूद है। एक ही प्रस्तर खंड से निर्मित नटराज शिव की यह अल्पख्यात मूर्ति नौ मीटर से भी अधिक ऊँची है।



दक्षिण के शिल्प में नटराज का मनोहारी रूपांकन छाया साभार



## निराला की ग़ज़लों का कथ्य और शिल्प

★ डॉ. जियाउर रहमान जाफरी



### सम्पर्क

ग्राम - पोस्ट - माफी  
वाया - अस्थावां  
जिला - नालंदा, बिहार - 803107  
9934847941, 6205254255

**नि**राला हिंदी में छायावाद के कवि माने जाते हैं। छायावाद का समय मोटे तौर पर 1918 से 1936 के बीच का है। छायावाद के चारों कवियों में छंद पर सबसे ज्यादा अधिकार निराला का था। शायद यही कारण है कि वह राम की शक्ति पूजा और तुलसीदास जैसी रचनाएँ लिख सके। उन्हें मुक्त छंद के प्रवर्तक के रूप में भी जाना जाता है। अपने छंद प्रयोग के कारण ही निराला ने अपनी कीर्ति बेला में ग़ज़लें भी लिखी। यह ग़ज़ल भी उस वक्त लिखी गई जब हिंदी में ग़ज़ल लिखने की कोई वास्तविक परंपरा नहीं थी। निराला से पहले कबीर, जायसी और भारतेन्दु आदि की ग़ज़लें मिलती हैं लेकिन भारतेन्दु की ग़ज़लें उर्दू लबो-लहजे की थीं, जिसका विषय भी वही परंपरागत प्रेम था। निराला ने ग़ज़ल के कथ्य को बदला और उसे प्रेम के संसार और दरबार से घरबार की तरफ लेकर आए। बाद में इसी रूप और तेवर को अख्तियार कर दुष्यंत ने हिंदी ग़ज़लें लिखी और ग़ज़ल सम्राट के रूप में जाने और पहचाने गए। यह भी सच है कि हिंदी ग़ज़ल को स्थापित करने में दुष्यंत की बड़ी भूमिका है। वह न होते तो हिंदी ग़ज़ल आज जिस रूप में स्थापित हो गई है, वह उस रूप में स्थापित नहीं हो पाती।

निराला की कविताओं की तरह उनका बचपन भी विविधताओं से घिरा रहा है। उत्सव का प्रतीक वसंत में उनका जन्म भले हुआ, पर जिन्दगी पतझर की तरह अभावों में गुजर गई। जन्म के कुछ समय के बाद माँ का देहावसान हो गया। कुछ समय के बाद पिता भी जल्दी गुजर गए। महामारी के प्रकोप से परिवार के कई सदस्य चल बसे। यहाँ तक कि पत्नी मनोहरा देवी भी उसका शिकार हो गई। महिषादल में मालिक से विवाद होने पर उनकी जो छोटी-मोटी नौकरी थी, वह भी खत्म हो गई। साहित्य में जब दिलचस्पी बढ़ी तो उन्होंने 1916 में 'जूही की कली' नाम की पहली कविता लिखी, जिसे उस समय की महत्त्वपूर्ण पत्रिका सरस्वती ने वापस कर दिया। यह अलग बात है कि निराला की पहचान आगे चलकर यही कविता बनी, जिसे हिंदी की पहली मुक्त छंद कविता के रूप में भी स्वीकारा गया है। अर्थ के दृष्टिकोण से इसमें रीतिकालीन कविता का भले प्रभाव हो, पर इसका प्रस्तुतीकरण बिल्कुल अपना है। 'समन्वय' और 'मतवाला' लिखते हुए एक कवि के रूप में उनकी पहचान बनती चली गई। छह फुट से अधिक

लबे चौड़े, कुश्ती के जानकार निराला के स्वास्थ्य की दशा की बनती-बिगड़ती रही, जिस कारण उन्हें कोलकाता को छोड़कर इलाहाबाद में शरण लेना पड़ा, जहाँ उन्हें आर्थिक विपन्नता के दिन गुजारने पड़े। इस दौरान उन्होंने 'सुधा' पत्रिका में संपादकीय विभाग में नौकरी कर ली, पर उससे इतना कम पैसा मिलता था कि जीवन जीना मुश्किल था। अपनी इकलौती पुत्री का ठीक से इलाज तक न कराने का दुख उनकी कविता 'सरोज स्मृति' में देखा जा सकता है, जिसे हिंदी के पहले शोक काव्य के रूप में भी स्वीकारा जाता है।

निराला छंद और मुक्त छंद दोनों के कवि हैं। ग़ज़ल लिखते हुए जहाँ उन्होंने फारसी के प्रचलित बहर का पालन किया है, वहीं कविता को छंद से मुक्ति दिलाने का भी प्रयास करते रहे। उन्होंने परिमल की भूमिका में लिखा है-मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्य की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंद के शासन से अलग हो जाना है।

अन्यत्र 'मेरे गीत' नामक एक निबंध में भी उन्होंने इस बात को दोहराते हुए लिखा है-भावों की मुक्ति छंदों की भी मुक्ति चाहती है। निराला की मुक्त छंद की कविताओं को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कविताओं में तुक का तो आग्रह है, पर मात्राओं का बंधन नहीं है।

निराला की कविताओं में कई रंग मिलते हैं। जब वह 'राम की शक्ति

पूजा' या 'तुलसीदास' लिखते हैं तो उनके कवित्व का पौरुष और ओज झलकता है। पर वही जब 'कुंजमुक्ता' जैसी कविता लिखते हैं तो उनका लहजा बदल जाता है। यद्यपि इस कविता में भी कवि पूंजीपतियों को शोषक के तौर पर रेखांकित करता है।

निराला की कविताएँ हो, कहानियाँ हों या ग़ज़लें, वह परंपरागत रूढ़ियों का विरोध करती हैं और सर्वहारा वर्ग के साथ हो जाते हैं।

निराला से पहले भारतेन्दु, भगवानदीन, प्रताप नारायण मिश्र, श्रीधर पाठक जयशंकर प्रसाद आदि की ग़ज़लें हमें मिलती हैं, पर इन सब ने विधा के तौर पर हिंदी ग़ज़ल को स्थापित करने की कोई कोशिश नहीं की, बल्कि शौक या प्रयोग के तौर पर कुछ ग़ज़लें लिखीं। ज्ञान प्रकाश विवेक की मानें तो निराला ने इन सब शायरों के बीच ग़ज़ल का एक माहौल बनाया। 'बेला' की भूमिका में निराला लिखते हैं- नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की ग़ज़लें भी हैं, जिसमें फारसी के छंदशास्त्र का निर्वाह किया गया है। छायावादी कवियों में प्रसाद ने भी ग़ज़ल शैली की रचना की है, लेकिन उन्होंने अपनी किसी कृति को ग़ज़ल का नाम नहीं दिया। निराला 'बेला' को ग़ज़ल घोषित करते हैं। बकौल डॉ. रामविलास शर्मा उन्होंने अपने ग़ज़लों में उर्दू की बोलचाल का रंग अपनाया है। निराला की एक-दो ग़ज़लों के कुछ शेर इस संबंध में देखे जा सकते हैं-

किनारा वह हमसे किए जा रहे हैं

दिखाने को दर्शन दिए जा रहे हैं  
जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने  
वही सूत तोड़े लिए जा रहे हैं  
छिपी चोट की बात पूछे तो बोले  
निराशा के डोरे सिए जा रहे हैं  
जमाने की रफ्तार में कैसा तूफ़ान  
मरे जा रहे हैं जिए जा रहे हैं  
खुला भेद विजयी कहाये हुए जो  
लहू दूसरे का पिए जा रहे हैं

निराला की एक ऐसी ही प्रसिद्ध ग़ज़ल है, जिसमें पूंजीपतियों की खैरियत तलब की गई है -

भेद खुल जाए वह सूरत हमारे दिल में है  
देश को मिल जाए जो पूंजी तुम्हारे  
मिल में है।

हल होंगे हृदय के खुलकर गाने सभी  
नये

हाथ में आ जाएगा वो राज जो महफिल  
में है।

ताक पर है नमक मिर्च लोग बिगड़े  
या बनें

सीखा क्या होगी पराई जब सिलाई  
सिल में है

पूरी उर्दू ग़ज़ल की रवायत को दरकिनार करते हुए हिंदी की यह पहली ग़ज़ल है, जिसमें बुर्जुआ वर्ग को चुनौती दी गई है। आगे चलकर विरोध का यही लहजा हिंदी ग़ज़ल का तेवर बन जाता है। निराला की ग़ज़लों में एक ऐसा निरालापन है, जो ऐसे काफियों को चुनते हैं जिस पर ग़ज़ल की जमीन मुश्किल से खड़ी होती है। शोले, गोले,

तोले, चोले, झोले जैसे रदीफों से ग़ज़ल लिखना सिर्फ़ निराला की, ही बस की बात थी, जिनके पास शब्दों की विशाल संपदा रही है। देखें ग़ज़ल के शेर -

आँखों के आँसू ना शोले बन गए तो क्या हुआ  
काम के अवसर न गोले बन गए तो क्या हुआ।

पेच खाते रह गये गैरों के हाथों आज तक  
पेच में डाले ना चोले बन गए तो क्या हुआ।

निराला को 'हिंदी साहित्य का चमकता हुआ नक्षत्र' नाम से भी जाना जाता है। अन्याय और शोषण के खिलाफ लिखने वाले छायावाद के वह पहले कवि हैं। भिक्षुक, तोड़ती पत्थर और कुकुरमुत्ता जैसी कविताएँ शोषक वर्ग की कलाई खोलकर रख देती है। किसान, श्रमिक वर्ग, निम्न वर्ग, मजदूर, मेहनतकश समेत तमाम साधनहीन लोगों के वे सर्वप्रिय प्रगतिशील कवि हैं। उनकी कविताओं में इतनी विविधता है कि कई बार यह निष्कर्ष निकलना मुश्किल हो जाता है कि उन्हें किस प्रकार का कवि कहकर पुकारा जाए। हर क्षेत्र में उनकी महानता दिखती है। उन्होंने अपनी कृतियों में इतिहास, धर्म, अध्यात्म प्रकृति, पुराण, सबका गहरा निचोड़ प्रस्तुत किया है। उनमें सिर्फ़ छायावाद नहीं वेदांतवाद राष्ट्रवाद और रहस्यवाद भी है।

वे जब ग़ज़लें लिखते हैं तो समकालीन रिवायत के तहत इसके मिज़ाजी को अपनाते हैं, लेकिन जल्दी ही उनका ध्यान समाज और देश के हालात पर चला जाता है।

ग़ज़ल की यह विशेषता भी है कि उनका हर शेर अर्थ के दृष्टिकोण से अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए निराला की यह ग़ज़ल देखें जो प्रेम में आँखों के इशारे से शुरू होती है, लेकिन उसमें प्रकृति, सुगंध, विद्रोह, सियासत सब की परतें खुलने लगते हैं -

बदली जो उनकी आँखें इरादा बदल गया  
गुल जैसे चमचमाया के बुलबुल मसल गया  
यह टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी मगर  
खिलकर सुगंध से किसी का दिल बहल गया  
खामोश फतह पाने को रोका नहीं रुका  
मुश्किल मुकाम ज़िंदगी का जब सँभल गया  
मैंने कला की पार्टी ली है शेर के लिए  
दुनिया के गोलंदाजों को देखा दहल गया

निराला की बहुत सारी ऐसी कविताएँ भी हैं जो ग़ज़ल की जमीन पर लिखी गई हैं जैसे यह पंक्तियाँ -

बाहर में कर दिया गया हूँ  
भीतर पर भर दिया गया हूँ

निराला ने ग़ज़लें प्रयोग के तौर

पर लिखी थीं। उन्होंने ग़ज़लें लिखकर एक प्रकार से ग़ज़ल को हिंदी कविता में लाने का प्रयास किया। निराला के पूर्व के ग़ज़लकारों और निराला की ग़ज़लों में एक अंतर साफ़ है कि पंडित निराला की ग़ज़लों में हिंदी का जातीय संस्कार झलकता है। कुछ शेर देखें -  
बातें चली सारी रात तुम्हारी  
आँखें नहीं खुली प्रात तुम्हारी

तितलियाँ नाचती उड़ाती रंगों से मुग्ध कर करके  
प्रसूनों पर लदकर बैठती है मन लुभाया है

तुम्हें देखा तुम्हारे स्नेह के नयन देखे  
देखी सलीला नलिनी के सलिल शयन देखे  
निराला ग़ज़ल का अध्ययन करने वाले सरदार मुजावर मानते हैं कि उन्होंने आपनी ग़ज़लों की रचना विभिन्न छंदों में की है, जैसे उनकी यह प्रसिद्ध ग़ज़ल बहरे हजज सालिम में है -  
चढ़ी है आँख जहाँ की उतार लाएँगी  
बढ़े हुए को गिरकर संवार लाएँगी

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निराला की हिंदी ग़ज़लें इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि उनसे पूर्व ग़ज़लों की कोई विकसित परंपरा नहीं थी। बावजूद इसके उन्होंने हिंदी में ग़ज़ल लिखने की समृद्ध परंपरा का सूत्रपात किया। इन ग़ज़लों में हिंदी के शब्द लाए गए और इस धारणा को समाप्त किया गया कि हिंदी भाषा में अच्छी ग़ज़लें नहीं लिखी जा सकती।





## बिटिया

★ शुभदा मिश्र



**सम्पर्क सूत्र :**  
14, पटेल वार्ड, डोंगरगढ़,  
(छ.ग.) 491445  
मो : 8269594598

# इ

स रविवार को देवलाल आया तो उसके साथ उसकी छोटी-सी बिटिया भी थी। देवलाल अच्छी कद-काठी का साँवला-सा युवक है। कोई पैंतीस-चालीस बरस का। मजदूरी करता है। मेरी बाड़ी की साफ-सफाई करने बीच-बीच में आता रहता है। बाड़ी यानी बगीचा ही समझ लो। बड़े-बड़े वृक्षों की बेहिसाब बढ़ आई मोटी-मोटी डालों को काटकर वृक्षों को सुंदर-सुव्यवस्थित कर देता है। लताओं वाले पौधों की बेतरतीब फैली लताओं को काट-छाँटकर, उन्हें आधार दे ऊपर चढ़ाकर मनोहारी रूप दे देता है। फूलों के पौधों को तराशकर निखार देता है। सँवार देता है मेरी बाड़ी को। इस बार आया तो साथ में उसकी छोटी बिटिया भी थी। बिटिया कोई छह-सात बरस की दुबली-पतली, गहरी साँवली, लगभग काली-सी, अपनी चमकीली चंचल आँखों से इधर-उधर देखती पिता से सटकर खड़ी थी। मैं बोली... इस बच्ची को क्यों ले आया रे देवलाल?

बोला...यह भी लगी रहेगी साथ।

मैं पूछने लगी...क्या नाम है तेरा? क्या पढ़ती है?

लड़की शर्म से पिता के पीछे ही छिप गई।

देवलाल बोला...नाम बता...बता न...मैडम जी पूछ रही हैं...बता क्या पढ़ती है?

लड़की पिता के पीछे छिपी-छिपी बोली... कौशिल्या, कक्षा 'तीसरी ब'।

मुझे हँसी आ गई। मैं घर के भीतर चली गई। देवलाल बिटिया के साथ बाड़ी में चला गया।

घर के भीतर काम-धाम निपटाते मैं बीच-बीच में बाड़ी में जाकर देख लेती। देवलाल नीम, अमरूद आदि बड़े-बड़े वृक्षों की बेहिसाब बढ़ आई मोटी-मोटी डालों को पेड़ पर चढ़, टँगिये से काट रहा है। नन्हों-सी बिटिया एक तरफ बैठी बगीचे में उग आए खर-पतवार उखाड़ रही है। देवलाल अब कटी हुई भारी भरकम डालों को टँगिये से काट-काटकर, एक समान लंबाई के टुकड़े कर एक कोने में रख रहा है। काटने से निकले नन्हें-नन्हे टुकड़ों, छिलकों को बिटिया एक तरफ ढेर बनाकर रख रही है। देवलाल अब बसंत मालती, चमेली, लौकी, तुरई आदि लताओं वाले पौधों की इधर-उधर छितराई शाखाओं को सहारा देकर

ऊपर चढ़ा रहा है। बिटिया चढ़ाने में मदद कर रही है। देवलाल अब गुलाब, बेला आदि फूलों के छोटे-छोटे पौधों की बढ़ आई कलमों को कैंची से काटकर तराश रहा है। बिटिया उन कटी हुई कलमों को एक तरफ ढेर बनाकर रख रही है। देवलाल अब पौधों के चारो ओर खोदकर मिट्टी निकाल रहा है। बिटिया उसी मिट्टी से पौधों के चारो ओर घेरा बना रही है। मैं अपने खिड़की से यह सब दृश्य देख-देखकर मुग्ध हो रही हूँ।

मुग्ध मैं इसलिए हो रही हूँ कि बाप-बेटी का ऐसा प्यारा-सा दृश्य मैंने बरसों से नहीं देखा। वरना यहाँ तो जो दृश्य दिखता है, वह मुझसे देखा ही नहीं जाता। दृश्य है मेरे ही घर में रहनेवाले एक परिवार का। परिवार मेरे ही मकान में किरायेदार है। मेरे मकान की ऊपरी मंजिल में रहता है। पति-पत्नी और दो बच्चे हैं। जिन सज्जन ने इनके लिए सिफारिश की थी, उन्होंने कहा था, “दे दीजिए मैडम, भले लोग हैं। इनके बच्चों के आने से आपका इतना बड़ा सूना घर गुलजार हो जाएगा। हँसते-खिलखिलाते बच्चे आपको दादी-दादी करते घेरे रहेंगे। आनंद आ जाएगा आपको तो।”

लेकिन न घर गुलजार हुआ, न आनंद आया। आरंभ में मुझे लगा, बच्चे संकोची हैं। कुछ दिन में खुलेंगे। लेकिन ये बच्चे खुले ही नहीं। न बेटी, न बेटा। बेटी लगभग छह-सात बरस की, बेटा लगभग तीन-चार बरस का। अजीब बच्चे। मेरी तरफ देखते तक नहीं। सामने पड़ जाऊँ तो सरासर

उपेक्षा। मैंने खुद आगे होकर छोड़ा तो इस हिकारत से देखा कि मैं सहम गई। मैंने हिम्मत कर दो-चार बार और कोशिश की, मगर अब हिकारत में चिढ़ भी शामिल। चिढ़ क्या गुस्सा। मैं इन बच्चों से डरने लगी। मैं कभी सोच नहीं सकती थी कि बच्चे ऐसे भी होते होंगे। यह बात नहीं कि इन बच्चों के माँ-बाप इन्हें कुछ सिखाते नहीं रहे होंगे। माँ-बाप दोनों ही सभ्य, सुशिक्षित, विनम्र, शिष्टाचार निभाने वाले। पिता तो खैर विनम्रता की मूर्ति ही। एक ही बात मुझे शुरू-शुरू में अजीब-सी लगी थी कि पिता कमाता-धमाता नहीं था। न कोई काम-धंधा, न नौकरी-चाकरी। हाँ, उसकी पत्नी शहर के शासकीय माध्यमिक शाला में शिक्षिका थी।

पिता कोई काम-धंधा भले न करता हो, मगर उसके काम का अंत नहीं था। पत्नी लगभग दस बजे तैयार होकर स्कूल चली जाती। फिर घर की, बच्चों की, हर बात की जिम्मेदारी पति की। बच्चों को तैयार कर स्कूल छोड़ना, फिर सिर गड़ाए घर के काम में पिल जाना। झाड़ू-पोंछा, बर्तन माँजना, पानी भरना, खाना बनाना, कपड़े धोना, सुखाना। सूखे कपड़े उठाकर ले जाना, कपड़ों पर प्रेस करना, घर व्यवस्थित करना। बच्चों के स्कूल से लौटने का समय हो गया तो भागना उन्हें लाने के लिए। उन्हें खिला-पिलाकर, तैयार कर फिर उनके ट्यूशन, कोचिंग में ले जाना, लाना। शाम को सब्जी-भाजी, घर-गृहस्थी के सामान लाने थैला

धरे बाजार जाना। यह सब तो उसके रोज के सामान्य काम। फिर बीच-बीच में कनस्तर भर भर गोहूँ लादे जाकर आटा पिसाना, बेसन पिसाना, पापड़, बड़ी, अचार बनाना, बनाकर धूप में रखना, उठाकर ले जाना, घर में किसी की तबीयत बिगड़ गई तो अस्पताल ले जाना, दवाईयाँ लाना, तीमारदारी करना। यहाँ तक कि बाड़ी की सफाई करनेवाला देवलाल न आया हो तो यह बाड़ी की सफाई भी कर देता। देवलाल जैसी विस्तृत सफाई नहीं, मगर जमीन के कचरे वगैरह साफ कर देता। बाड़ी की सफाई उसे इसलिए करनी पड़ती, क्योंकि बाड़ी का उपयोग वही लोग करते, जबकि बाड़ी किराये पर नहीं दी गई थी। पर सारा दिन बाड़ी में उन्हीं का काम। बाड़ी में लगे नल पर वह कपड़े धोता, वहाँ बंधे तारों पर सुखाता, गोहूँ, चावल आदि अनाज वहीं धोता, सुखाता। पापड़, बड़ी, अचार सब वहीं सूखते, बाड़ी में एक तरफ बने शेड में दोनों पति-पत्नी के मोटर साइकिल, स्कूटर रखे रहते। बच्चों की साइकिलें भी। आने वाले मेहमानों के वाहन भी। मैं तो बाड़ी में सिर्फ एक बार जाती, सुबह के समय पूजा के लिए फूल तोड़ने। बाकी बाड़ी पूरी तरह उनकी। उनकी मतलब उसी की, क्योंकि बाड़ी में काम करता वही नज़र आता। काम भी करता और नज़र भी रखता। जो भी फल, सब्जियाँ तैयार हो गए हों, वही तोड़ता। लाकर दिखाता...मैडम जी आज इतने सीताफल निकले, आज इतने पपीते, आज इतनी



संपन्न, सुखी दिखने वाले परिवार में यह बलि का बकरा है। दिन-रात नौकर की तरह खटने के कारण नहीं, बल्कि इस कारण की घर में किसी की भी इसके प्रति सहानुभूति नहीं दिखती। सामान्य दयाभाव तक नहीं। पत्नी इसकी अद्भुत आत्मकेन्द्रित स्त्री। सुबह वह तैयार होकर नीचे उतरती। उसके

सेम, इतनी लौकियाँ, इतनी कुंदरू। अपने लिए थोड़ा-सा रखकर बाकी मैं उसे ही दे देती। ज्यादा हो तो बँटवा देती पड़ोसियों को, अपनी कामवाली बाई को, धोबिन को, परिचितों को।

उसके घर तो न काम वाली बाई थी, न धोबी। दस नौकरों का काम वह अकेले करता। हुलिया भी एकदम नौकरों जैसा। साँवले शरीर पर घुटनों तक का चड्ढा, छेदों वाली फटी गंजी। हाँ, जब पत्नी और बच्चों के साथ घूमने जाता, तब कायदे से कपड़े पहने रहता। अक्सर रेशमी कुर्ता-पाजामा या बड़िया पैट-शर्ट। पत्नी तो खैर सज-धजकर बहुत ही सुंदर दिखती। बेटी की सुंदरता का क्या कहना! एक से एक खूबसूरत पोशाक में एकदम शाहजादी और बेटा तो पूरा नवाब। देखने वालों को सभ्य, सुशिक्षित, संपन्न, सुखी परिवार दिखता।

मगर मुझे लगता इस सभ्य,

उतरने के पहले पति उसका स्कूटर झाड़-पोछकर बाड़ी से निकाल सामने सड़क पर रख, एक तरफ खड़ा हो जाता। पत्नी नीचे उतरी, स्कूटर स्टार्ट की और हवा। पत्नी के जाते ही यह बच्चों को तैयार करने में लग जाता। उनके बस्ते, पानी की बोतल वगैरह लिए नीचे उतरता। उसके पीछे ठसके से कदम रखते, उतरते उसके साहबजादे। बच्चों को स्कूल में छोड़ फिर घर के काम में जुट जाता। उनके लौटने का समय होते ही बाइक दौड़ाता-भागता उन्हें लाने के लिए। ऐसे ही उनके ट्यूशन, कोचिंग वगैरह में ले जाने, लाने में उसकी सतर्कता। एकदम हाथ बाँधे आकाओं का मुँह जोहता गुलाम। मैं यह इसलिए कह रही हूँ कि मेरे घर में इन्हें रहते अब छह बरस हो गए। मैंने पति-पत्नी को कभी खुलकर हँसते, बोलते, खिलखिलाते, ठहाका लगाते

नहीं देखा। न पत्नी को, न बच्चों को। पत्नी कभी हँसती भी तो बड़ी कृपणता से। जरा-सी 'हे...हे'...बस। बच्चे तो इतना भी नहीं। इन छह बरसों में बेटी एक सुंदर किशोरी बन आई थी। अब खुद ही शान से स्कूटर चलाती, स्कूल जाती, मगर मज़ाल चेहरे पर कभी हँसी दिख जाए! हँसी क्या, कभी कोई सुंदर भाव ही दिख जाए। बेटा तो और भी आगे। एक चिरस्थायी भाव उसके चेहरे पर सदा विराजमान...सारी दुनिया के प्रति उपेक्षा का। लगभग तिरस्कार का। बात वह सिर्फ पिता से करता। बात वह क्या करता, वह पिता की लल्लो-चप्पो का अपनी कर्णकटु-सी आवाज में झल्लाता-सा जवाब दे देता। पिता उसी में निहाल। बेटी की आवाज तो और भी करारी। तीखी। तीखी और आदेश भरी.. "पापा, मेरा स्कूटर निकालो। मेरा बैग लाओ।" पत्नी की आवाज तो सुनाई ही नहीं देती। अपना स्कूल। अपना घर। न कोई मित्र, न सखी-सहेली। वही हाल बेटी का, वही हाल बेटे का। गैरों की छोड़िए, कम से कम घर के मुखिया से तो बढ़िया बोलें-बतियाएँ। मगर उसे मुखिया समझता ही कौन? समझे कैसे, उसमें खुद भी तो मुखियापन का कोई ढंग नहीं।

घर के भीतर काम-धाम करते, चलते-फिरते मैं खिड़कियों से बाहर बाड़ी पर नजर डाल लेती। देखती, वह बाड़ी में धोबीघाट बनाये ढेर सारे कपड़े धो रहा है। बाड़ी में बँधे तारों पर सुखा रहा है। सूखे कपड़ों को उठाकर ऊपर ले जा रहा है। सोचती, पत्नी तो ऊपर



घर के काम में लगी होगी, कम से कम किशोरी बेटी ही आकर बाप की मदद करे। बाप कपड़े धो रहा है तो कपड़े ही सुखाने लगे। सूखे कपड़े ही तारों से उतारकर ऊपर अपने घर ले जाए। कई बार पानी ऊपर नहीं चढ़ पाता। सो, पिता को बाड़ी के नल से ही पानी भरना है। वह बड़े बड़े गुंड, बालटियाँ, ड्रम नीचे लाता, माँजता, पानी भरता, बड़े कष्ट से ढो-ढोकर ऊपर ले जाता। मैं खिड़कियों से देखती। बहुत दुख होता। घर के भीतर ही बड़बड़ाती... “कैसा इस लड़की का कलेजा! कम से कम बरतन ही माँज दे। पानी ही भर दे। भरी हुई छोटी बालटियों को ऊपर ले जाए। अगर ये लोग कुछ न कर सकें तो इतना ही कर दें कि नीचे ही नहाना-धोना आदि करें। बाड़ी में एक तरफ बाथरूम, टॉयलेट हैं ही। इस बेचारे को सहूलियत होगी। ऊपर सिर्फ खाने-पीने का पानी ले जाया करेगा।” मेरी कामवाली बाई तो देखती ही रहती यह सब। मुझसे ही कहती... “आप क्यों देखती हो उधर? देखने से आपको दुख होता है, जबकि उस आदमी को यही सब सुहाता है।” एक बार तो मेरा कलेजा इतना फट गया कि लगा जाकर माँ-बेटी को कसकर सुनाऊँ। हुआ यह है कि गाँव में इस आदमी के परिवार की भारी खेती-बाड़ी है। अनाज, फल, सब्जियाँ यह गाँव से ही लाता है। बोरियों में भरकर। बाइक पर लादकर। उस दिन अनाज से भरी बोरी लादकर यह ऊपर चढ़ रहा था कि सीढ़ियों पर पैर फिसल गया। बोरी तो लुढ़कती नीचे गिरी। यह भी गिरा।

नीचे गिरता हुआ रेलिंग पकड़े सीढ़ियों पर पड़ा कराहता रहा। इसके घर से कोई नहीं निकला। इसने किसी को आवाज लगाई भी नहीं। इसे सीढ़ियों पर पड़े कराहते देख मैं ही गई। सहारा देकर नीचे उतारा। मोच आ गई थी। घुटने छिल गए थे। खून रिस रहा था। सो, डेटाल लाकर लगाया। यह बहुत देर तक नीचे जमीन पर घुटने पकड़े बैठा रहा। झेंप-झेंपकर पछताता हुआ-सा बताता रहा कि कैसे उससे ऐसी गलती हो गई। डर भी रहा था कि कहीं मैं ऊपर जाकर उसकी पत्नी या बेटी को कुछ बात न सुना दूँ।

पर्व-त्योहारों पर तो मेरा हृदय और भी विदीर्ण होता रहता। देखती, स्वाभाव से ही धर्मिक, यह लगा हुआ है पर्व के स्वागत की तैयारी करने में। मजदूर बना पूरे घर की साफ सफाई में पिला हुआ है। तरह-तरह से सजा रहा है अपना घर। आम्रपत्तों के तोरण बना रहा है। झिलमिलाते बंदनवार लगा रहा है। दरवाजे पर नन्हें-नन्हें रंगीन बल्बों की झालर लगा रहा है। देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, तस्वीरें, आसन साफ-सुथराकर सुंदरता से जमा रहा है। बाड़ी में उतने फूल नहीं निकले तो बाइक दौड़ाता जा रहा है। नर्सरी से, बाजार से, जाने कहाँ-कहाँ से थैले भर-भर फूल ला रहा है। बैठे-बैठे माला बना रहा है। फल-मिठाइयाँ, पूजा से संबंधित सामाग्रियाँ ला रहा है। पूजा का थाल सजा रहा है। पत्नी कुछ कुछ सहयोग कर रही है। मगर बेटी? मज़ाल कि तोरण ही बना दे। माला ही बनाने लगे।

दीयों में तेल-बाती ही डालने लगे। सारी तैयारी कर मुझे बुलाने आ रहा है पूजा में शामिल होने। पूजा में सिर्फ पति-पत्नी और मैं। बेटे को पुचकार-पुचकार कर बैठाने की कोशिश कर रहा है। बेटी बगल के कमरे में बैठी जाने कौन-सा महत्वपूर्ण कार्य कर रही है, सारी हलचलों से निर्लिप्त। आह्वान, स्तुति, पूजा, हवन, आरती, घंटी सबसे बेअसर। एकाध बार मैंने जाकर डाँटा तो उसका चेहरा तो बिगड़ना ही था, उसके माता-पिता का चेहरा इतना आहत हुआ कि मैं सहम गई।

आखिर यह लड़की इतनी हृदयहीन क्यों है? सोचती तो मुझे लगता, हृदयहीनता की यह प्रवृत्ति इसे अपनी माँ से मिली है। इसकी माँ मेरे सामने पड़ जाने पर अत्यंत विनम्रता से प्रणाम करती। पर्व-त्योहारों में पति के साथ आकर पैर छूती। आशीर्वाद लेती। मैं समझ जाती, जरूर पति के कहने से आती है। वरना जहाँ तक बने, यह मुझे अनदेखा ही करती। इसका सारा ध्यान अपना कैरियर बनाने में। घर का जरूरी काम निपटाने के बाद यह पढ़ती रहती, आगे की तरक्की के लिए। कुछ न कुछ कोचिंग लेने भी जाती रहती। कभी ‘स्पोकन इंगलिश’ की कोचिंग तो कभी ‘पर्सनैलिटी डेवलपमेंट’ की कोचिंग। कई बार मैं भीषण बीमार होकर बिस्तर में पड़ी हूँ। इसका पति मुझे नहीं देख रहा है तो आकर पूछ रहा है... “मैडम जी, कैसे पड़ी हैं?” डॉक्टर के पास ले जा रहा है। दवाइयाँ, इंजेक्शन, फल ला रहा है। मगर पत्नी? उसे कोई मतलब

ही नहीं। एक बार मैं लगातार हफ्ते भर बिस्तर में पड़ी रही। इसका पति अपने गाँव गया था, पिता की गंभीर बीमारी में। यह महिला एक बार झाँकने तक नहीं आई। स्कूल के सहकर्मि, परिचित सबसे बस औपचारिक शिष्टाचारी संबंध। रिश्तेदारों का भी वही हाल। चाहे मायके वाले हों, चाहे ससुराल वाले। वही बस जरा-सी हैं...हैं। एक बार तो मैं दंग रह गई। दोपहर का समय। भारी धूप। मैंने अपने कमरे की खिड़की से देखा, बाड़ी में जमीन पर बैठा एक बूढ़ा आदमी कुछ-कुछ खोद रहा है। “कौन हो जी?” मैंने जोर से पूछा। उसने कुछ जवाब दिया। मुझे समझ नहीं आया। मैंने फिर पूछा। वह मेरी खिड़की के पास आकर बोला...मैं सुमन का पिता जी हूँ मैडम जी।

सुमन का पिता जी! सुमन तो मेरे किरायेदार की पत्नी का नाम है। मैंने फौरन दरवाजा खोला। भीतर बुलाया। आदर से कुर्सी पर बिठाया। ठंडा शरबत दिया। वह गदगद हो गया। सहज सरलता से बताता गया...वह गाँव में खेतों में मजदूरी करता था। खेतों में जब काम नहीं होता तो शहर में आकर रिक्शा चलाता था। उसने रायपुर जैसे शहर में रिक्शा चलाया है और नागपुर जैसे शहर में भी। बेटी सुमन शुरू से पढ़ने में अव्वल थी। गाँव की प्राथमिक शाला के शिक्षक ने उससे कहा कि लड़की को नवोदय विद्यालय में प्रवेश हेतु परीक्षा दिलवाओ। शिक्षकों ने ही उसे खूब पढ़ाकर परीक्षा के लिए तैयार किया। लड़की ने परीक्षा पास की। फिर यह नवोदय विद्यालय के

छात्रावास में ही रहकर पढ़ती रही। सब परीक्षा धड़ाधड़ पास करती गई। स्कूल की भी और कॉलेज की भी। शिक्षक इसकी हमेशा तारीफ करते थे। पढ़ाई के बाद उन्होंने ही इसे टीचर वाली ट्रेनिंग करवाई। यह टीचर बन गई। टीचर बनते ही बिरादरी के एक पढ़े-लिखे संपन्न परिवार ने अपने पढ़े-लिखे बेरोजगार लड़के के लिए के लिए इसे माँग लिया। लड़के के पिता मामूली पढ़े-लिखे,

कि इस व्यवस्था से घर तो सुचारू रूप से चल ही रहा है, बच्चे नामी अंगरेजी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। नब्बे प्रतिशत अंक ला रहे हैं। आगे शानदार कैरियर बनाएँगे।

मुझे उनकी इन बातों से कोई परेशानी नहीं थी। परेशानी होती इन माँ-बेटी के ढंग देखकर। यह बूढ़ा बाप जब कभी भी आता, ऐसे ही बाड़ी में जमीन पर चुपचाप अकेला बैठा दिखता। मैं ही कुर्सी निकालकर उसे बैठने को

**आखिर यह लड़की इतनी हृदयहीन क्यों है? सोचती तो मुझे लगता, हृदयहीनता की यह प्रवृत्ति इसे अपनी माँ से मिली है। इसकी माँ मेरे सामने पड़ जाने पर अत्यंत विनम्रता से प्रणाम करती। पर्व-त्योहारों में पति के साथ आकर पैर छूती। आशीर्वाद लेती। मैं समझ जाती, जरूर पति के कहने से आती है। वरना जहाँ तक बने, यह मुझे अनदेखा ही करती। इसका सारा ध्यान अपना कैरियर बनाने में। घर का जरूरी काम निपटाने के बाद यह पढ़ती रहती, आगे की तरक्की के लिए। कुछ न कुछ कोचिंग लेने भी जाती रहती। कभी ‘स्पोकन इंगलिश’ की कोचिंग तो कभी ‘पर्सनैलिटी डेवलपमेंट’ की कोचिंग। कई बार मैं भीषण बीमार होकर बिस्तर में पड़ी हूँ। इसका पति मुझे नहीं देख रहा है तो आकर पूछ रहा है....‘मैडम जी, कैसे पड़ी हैं?’**

भिलाई कारखाने में काम करते थे। उसी नौकरी से घर-बार, खेती-बारी सब बना लिए। बच्चों को पढ़ाया भी। यह लड़का नौकरी ढूँढते-ढूँढते पस्त हो चुका था। नौकरी के नाम से ही डरने लगा था। शिक्षिका लड़की से शादी होते ही मानो उसे नौकरी मिल गई। वह जोर-शोर से इसी नौकरी में भिड़ गया। आज तक भिड़ा हुआ है। इसके घर के लोग, इसके पिता, भाई-बहन सभी उसकी इस नौकरी से राजी हैं। राजी हैं

देती। ज्यादा बात न करती कि कहीं पति-पत्नी अन्यथा न ले लें। मगर बेचैन होती रहती। बाप आया है और बेटी पर कोई असर नहीं। मैं होती तो पिता को यों सुनसान बाड़ी में कभी अकेले न बैठे रहने देती। कितना सत्कार करती। पिता के लिए उनकी पसंद के भोजन बनाती। उन्हें अपनी बातें बताती। खोद-खोदकर पूछती उनका हालचाल। घर-परिवार, मुहल्ले टोले, गाँवभर की बातें पूछ डालती। उनके आराम के लिए बिस्तर

लगाती। रोम-रोम लरजता रहता, पिता आए हैं, क्या कर डालूँ पिता के लिए!

मुझे अपने पिता याद आ जाते। मेरे पिता का कारोबार आसपास के शहरों में था। सो, वे सुबह से ही निकल जाते। उनके बिस्तर छोड़ने के पहले ही मैं उठ जाती। उन दिनों हमारे घर नल नहीं थे। सो, कुएँ से पानी निकाल-निकालकर पास रखी बालटियों में भर देती। पिता उठकर शौच आदि से निपटते। मंत्रोच्चार करते नहाते। सिर्फ धोती लपेटे अपने कमरे में जाकर गायत्री जप करते। मैं पिता के पसंद की चाय बनाकर इंतजार करती रहती, कब इनका जप खत्म हो। चाय अगर ठंडी हो जाए तो दुबारा बना लाती। पिता का जप खत्म होता। कपड़े पहन, तैयार हो चाय पीते। मेरे भीतर सुकून उतर आता। अपना बड़ा-सा थैला लिए वे निकल जाते। उन्हें गाड़ी पकड़नी होती। मैं उन्हें दूर तक जाते हुए देखती रहती।

शाम को हम सभी बहनें बार-बार बाहर ताकती रहतीं, बाबू जी आ रहे होंगे। उन्हें दूर से ही देख सड़क पर दौड़ जाते। उनके हाथ से थैला ले लेते। सबेरे तो सिर्फ मैं जगी होती, इस समय तो और बहनें भी। सभी में पिता की सेवा करने की ललक। रात में पिता के थके-माँदे बिवाई फटे पैरों के तलवे में ठंडा पानी और तेल मलने की होड़। विह्वल पिता कहते ...जाओ बेटा, तुम लोग पढ़ो-लिखो। मगर पिता की सेवा

में जो उल्लास, जो आंतरिक आनंद था, वह अलौकिक था। उस अलौकिक आनंदरस में भीगना हम कैसे छोड़ें? पूरा घर भीगा रहता। माँ अपने पिता को याद कर आँसू पोछने लगती थीं। माता-पिता को हर संभव सुख पहुँचाने की भारी लालसा तो थी ही, अड़ोस-पड़ोस के काम आने की भी खुशी होती। किसी ताऊ जी का स्वेटर बुनना है, तो किसी



बुआ जी की विशेष पूजा-अनुष्ठान में मदद करनी है, कोई चाची जी माहवारी से अलग बैठी हैं तो उनके घर जाकर भोजन बनाना है। घर की बेटा तो थीं ही, पड़ोस की बेटिया भी थीं हम लोग। मगर आज यह क्या देख रही हूँ मैं? न माँ को अपने बाप के लिए दर्द है, न बेटा को अपने बाप के लिए। यह बेटा तो मान लो अपनी माँ से हृदयहीनता पाई है पर और दूसरी बेटियाँ? पिछले दिनों की ही घटना दिमाग से जाती

नहीं। एक पुरानी परिचिता के पति का जन्मदिन था। उन्होंने दोपहर में रामायण मंडली बुलाई थी। ऐसे अवसरों पर वे नौकर-चाकरों के सहयोग से कार्यक्रम निपटाती हैं। संयोगवश आज नौकर उपलब्ध नहीं थे। तबीयत खराब थी मेरी, फिर भी गई। देखा, गृहिणी खुद ही सामने कमरे के फर्नीचर निकालकर दूसरे कमरों में रख रही है।

फिर उस कमरे में बड़ी-बड़ी दरियाँ बिछा रही है। मंडली वाली महिलाएँ आ गई हैं, अपना साजो-सामान, अपना ढोल, झाल, मंजीरा लेकर। गृहिणी दौड़कर उनका स्वागत कर रही है। मंडली वाली महिलाएँ अपना आसन जमा रही हैं। पहले अपने साथ लाई रामदरबार की तस्वीर स्थापित करती हैं। हाथ जोड़ करुण स्वरों से राम-जानकी का आह्वान करती हैं। फिर पूजा। गृहिणी उन्हें गंगाजल, फूल, अगरबत्तियाँ वगैरह ला-लाकर दे रही है। अब तक और भी महिलाएँ आकर दरी पर बैठती जा रही हैं। कमरे में भीड़ हो गई है।

पूजा समाप्त कर मंडली रामदरबार की तस्वीर के चारों ओर घेरा बनाकर बैठ रही हैं। अपनी-अपनी रामायण निकालती हैं। सिर से लगाकर प्रणाम करती हैं। फिर रामजी का जयघोष कर शुरू हो जाती हैं.....'मंगल भवन अमंगल हारी...' महिलाओं का समवेत स्वर अत्यंत मधुर और हृदयस्पर्शी है। पूरा कमरा ही नहीं, पूरा घर ही रामायण की हृदयग्राही चौपाइयों से गूँज रहा है। सब विभोर हो सिर हिलाते साथ दे रहे हैं। मगर गृहिणी? मंडली में किसी को प्यास लग रही है। किसी को बाथरूम पहुँचाना

है। किसी को और कुछ। प्रौढ़ा गृहिणी दौड़-दौड़ कर सेवा दे रही है। अंत में आरती हो रही है। सभी महिलाएँ खड़ी होकर हाथ जोड़े सुमधुर सुरों में आरती गा रही हैं... 'आरती श्री रामायण जी की...।' पूरा घर गुंजित हो रहा है। आरती के बाद आशीर्वचन। गृहिणी आकर रामजी की तस्वीर के आगे बैठ जाती है। सिर ढककर। हाथ जोड़े। झुकी हुई। आशीर्वाद ले रही है अपने लिए, अपने बाल-बच्चे, पति, पूरे परिवार के लिए। मंडली ढोलक की थाप के साथ गा रही है... "बना रहे तेरा भाग सुहागन।" उनका कार्यक्रम समाप्त हुआ। अब चाय-पानी। गृहिणी अब चाय बनाने लगी। महिलाएँ इसमें मदद कर रही हैं। सबको विदा करते गृहिणी लस्त-पस्त हो गई है। आखिरी व्यक्ति को विदा कर दरी पर ही पसर जाती है, चारो खाने चित्त। मेरी तरफ देख हँसती है... अभी तो सारा पसारा समेटना है दीदी। थोड़ा आराम कर लूँ। मैं पूछती हूँ... निकिता नहीं है क्या?

निकिता इनकी सुपुत्री है, कॉलेज के आखिरी साल में है।

बोली- है दीदी। पढ़ रही है।

सुनते ही मेरे तलवे की लहर माथे में। वाह री इनकी पढ़ाई! घर में इतना बड़ा आयोजन! माँ की हड़ड़ी-पसली चूर हो रही है। इस लड़की से इतना भी नहीं हुआ कि आखिर में आकर चाय ही बना देती।

मैं भीतर जाने लगती हूँ कि गृहिणी एकदम उठकर बैठ जाती है। धिंधियाने लगती है। उसके कॉलेज में कैम्पस सेलेक्शन होने वाला है। तैयारी

कर रही है दीदी। उसके कैरियर का सवाल है।

मेरा दिमाग बौखला जाता है। किससे अपनी बौखलाहट कहूँ? मेरी सब परिचितों के बेटे-बेटियों का कमोबेश यही हाल है। इनके माँ-बाप भी तो ऐसे ही। औकात से बढ़कर किए जा रहे हैं। पढ़ा रहे हैं एक से बढ़कर एक मँहगे स्कूलों में। कॉलेज में। सौ में सौ नंबर लाने हैं इन्हें। दिला रहे हैं तरह-तरह के ट्यूशन, कोचिंग। नाच, गाना, पेंटिंग, योगा, ऐरोबिक्स, भाषण, सब सिखा डालना चाहते हैं। बेटों से ज्यादा बेटियों से अपेक्षाएँ। सो उनकी सुंदरता के प्रति भी एकदम सतर्क। पिताश्री स्वयं सुपुत्री को ले जा रहे हैं मँहगे से मँहगे ब्यूटी पार्लर में। एक-एक अंग तराशा, सँवारा जा रहा है। विजेता बनना है उसे। लक्ष्य है, पद, पोजीशन, भारी पैकजों वाली नौकरी। जा रही हैं सीधे अपने लक्ष्य की ओर। न माँ-बाप दिख रहे हैं उसे, न अड़ोस-पड़ोस। न समाज, न देश। पिछले दिनों टी.वी. में देखा एक दृश्य भूलता नहीं है। रूस और यूक्रेन के युद्ध में यूक्रेन में फँसे भारतीय छात्रों की अंतिम किशत लौट रही है। उनके स्वदेश पहुँचने पर उनके स्वागत में केन्द्रीय मंत्री खड़े हैं। भारी अफसर खड़े हैं। हाथों में फूल लिए। नमस्कार करते हुए। ये युवा छात्र-छात्राएँ उनकी तरफ देख तक नहीं रहे हैं। मुँह चढ़ाए चले आ रहे हैं। एक छात्रा गुस्से में भरी बयान दे रही है... "हम लोगों को जहाँ ठहराया गया था, वहाँ कोई सुविधा नहीं थी। बाथरूम में पानी नहीं, टॉयलेट गंदा, खाना

बेस्वाद। हमारी परेशानियों पर ध्यान नहीं दिया गया।" टी.वी. देखते लोग अवाक्। आहत... बताओ कैसे छात्र हैं?

मगर मुझे कोई आश्चर्य नहीं। मैं तो ऐसे ही युवक-युवतियाँ देख रही हूँ यहाँ। अपने चारो ओर। मन इतना खराब है कि मैं इनकी तरफ देखती ही नहीं। लड़कियों को तो बिल्कुल भी नहीं। चाहे कितनी भी सुंदर दिखें। मुझे तो सुंदर लग रही है यह काली-कलूटी बालिका जो अपने नन्हें-नन्हें हाथों से अपने पिता की मदद कर रही है। मिट्टी उठाने में, कचरा फेंकने में, क्या रियाँ बनाने में।

अब एक बज गए हैं। उनके भोजन का समय। दोनों बाप-बेटी अब बाड़ी के नल में हाथ-पाँव धो रहे हैं। बिटिया गमछा लाकर पिता को देती है। पिता हाथ-पाँव पोंछता है। बेटी भी। नीम की छाँव तले दोनों भोजन के लिए बैठते हैं। बिटिया केले का बड़ा-सा पत्ता तोड़कर ले आई है। दो टुकड़े करती है। टिफिन खोलकर भात निकालती है। एक टुकड़े पर भात रखकर उस पर रसदार सब्जी डालती है। मासूम श्रद्धा से पिता के आगे रखती है। दूसरे टुकड़े पर भात-सब्जी रख खुद लेती है। पिता से पूछ रही है... माँ चटनी भी रखी है बाबू, दूँ?

खिड़की से झाँकती हुई मेरी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगते हैं।



## नेपाल की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक यात्रा

★ माँगन मिश्र 'मार्त्तण्ड'



प्रधान संपादक,  
'संवदिया' साकेत, बंगाली टोला,  
फारबिसगंज - 854318 (बिहार)  
मो. : 9973269906

**रा**हुल सांस्कृत्यायन एवं बाबा नागार्जुन का जीवन यात्राओं का जीवन रहा है। यात्राओं से ही उनकी चेतना स्फूर्ति पाती थी। वस्तुतः यात्रा के बिना मनुष्य का जीवन अपूर्ण ही रह जाता है। यात्रा हमें ताजगी देती है, चेतना देती है और भविष्य का मार्ग भी प्रशस्त करती है। मानवीय चेतना को सामयिक गतिविधियों से जोड़ना ही अन्तःयात्रा है और इसी अन्तःयात्रा के लिए बाह्य यात्रा भी अपरिहार्य हो जाती है, ताकि हम विकसित हो सकें, अन्यथा जड़ जीवन किस काम का...? दृष्टि और दृष्टिकोण पाने हेतु भीतर और बाहर की यात्रा समान रूप से आवश्यक हो जाती है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं, 'अध्यात्म कोई रीति - रिवाज नहीं, बल्कि जीवनदृष्टि है।' और इसी जीवनदृष्टि के लिए यात्रा अनिवार्य हो जाती है।

इसी जीवनदृष्टि की तलाश में बड़ी बेटी रेणु के साथ मैं 6 नवम्बर 2017 को नेपाल की यात्रा पर निकल पड़ा हूँ। बस द्वारा फारबिसगंज (बिहार) से जोगबनी, फिर विराटनगर (नेपाल) होते हुए संध्या 5 बजे इटहरी (नेपाल), मझले साले गोविंद जी के आवास पर पहुँच गया हूँ। वे लोग पूर्व से ही इटहरी बस स्टैंड पर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। वस्तुतः मेरी ससुराल तो अररिया जिला में ही है, किन्तु मेरे श्वसुरजी त्रिभुवन विश्वविद्यालय, धरान (नेपाल) से उपप्रधानाचार्य के पद से सेवानिवृत्त होकर धरान में ही बस गये थे। सो मेरा वहाँ आना - जाना होता था। किन्तु उनके निधन के बाद तीन भाई, तीन जगहों के निवासी हो गए हैं। सबसे बड़ा अररिया जिला में, मझला इटहरी में तथा सबसे छोटा विराटनगर में अपना - अपना घर बनाकर सुव्यवस्थित हो गए हैं। बहुत दिनों से मझले साले का आग्रह था इटहरी आने का, पर समयभाव में मैं नहीं जा सका था। सेवानिवृत्ति के बाद आज मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ है। रात्रि विश्राम इटहरी में। बच्चों सहित पारिवारिक सदस्यों से वार्ताएँ होती रहीं। संयोग ऐसा कि वहीं गोविंद जी के श्वसुर जी (जो काठमांडू में रहते हैं) से पहली मुलाकात होती है और काठमांडू की यात्रा तत्काल सुनिश्चित हो जाती है।

प्रातः 7 नवम्बर को यहीं छोटे साले, सरहज तथा मझली साली से भेंट - वार्ताएँ होती हैं। वे लोग मुझसे मिलने ही अपने कार्यों से अवकाश लेकर आये थे। भोजनोपरांत 4 बजे संध्या हम - बेटी रेणु, मझली साली कल्याणी तथा सरबेटी शानू के साथ राजविराज (नेपाल) हेतु बस में बैठ गए हैं। रातभर यात्रा होती रही। प्रातः 7 बजे राजविराज स्थित दूसरी साली विद्या के आवास पर पहुँच



गये हैं। राजविराज की यह मेरी पहली ही यात्रा है। सोचा कि इसी बहाने उन लोगों की तमन्नाएँ भी पूरी हो जाएँ। दिनभर पारिवारिक वार्ताएँ होती रही हैं। रात्रि भोजनोपरांत विश्राम में चला गया हूँ। प्रातः सखड़ा स्थित छिन्नमस्ता भगवती के दर्शन का कार्यक्रम तय हो गया है। सो 8 नवंबर को स्नानादि से निवृत्त होकर एक गाड़ी रिजर्व कर हम सभी (विद्या और उनके पति सहित) 8 बजे प्रातः छिन्नमस्ता भगवती, सखड़ा के प्रांगण में प्रवेश कर गये हैं।

**छिन्नमस्ता भगवती :** नेपाल के सप्तरी जिला में राजविराज से दक्षिण सखड़ा ग्राम में यह शक्तिपीठ अवस्थित है। यहाँ सबकी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं, सो मंदिर-प्रांगण में सदैव भीड़ बनी रहती है। किंतु नवरात्रि में यहाँ अपार

भीड़ हो जाती है।

मंदिर के बगल में एक बड़ा तालाब है, जिसमें पक्की सीढ़ियों का सुंदर घाट बना हुआ है। तालाब का जल देह पर छींटकर हम मंदिर में प्रवेश कर गये हैं। हमने माता के दर्शन-पूजन किए। अपार शांति का अनुभव हो रहा है। सर्वत्र आध्यात्मिक माहौल व्याप्त है। यह आकर्षक मंदिर है। ईंट की दीवाल पर काष्ठ निर्मित

छत, नेपाली वास्तुकला का अनुपम उदाहरण है। यहाँ प्रतिदिन छागबलि दी जाती है। भक्तगण अपना-अपना छाग लेकर भक्ति-भावना से यहाँ आते हैं, किन्तु माता की ऐसी विशेषता कि एक भी मक्खी देखने को नहीं मिलती है। फिर पोखर की बाँयी ओर जाकर हम कृत्रिम निर्मित कुछ देवी-देवताओं के भी दर्शन करते हैं। शायद स्थानीय लोगों ने इसे पर्यटन के लिहाज से बनवाया है। हमने मंदिर परिसर में कई ग्रुप तस्वीरें ले ली हैं।

हमारी संस्कृति में राजाओं के लिए भी वानप्रस्थ की व्यवस्था है। यही हमारी उज्ज्वल परंपरा है। कर्णाटवंशी राजा नान्यदेव की पाँचवीं पीढ़ी के राजा शक्रसिंह थे। वे अपने पुत्र हरिसिंह देव को गद्दी सौंप कर स्वयं वानप्रस्थ जीवन

जीने के लिए सप्तरी (नेपाल) आ गए थे। वहीं जंगलों को साफ करते हुए उन्हें इस भगवती की मूर्ति मिली थी, जिसे उन्होंने अपनी कुलदेवी के रूप में वहीं स्थापित कर दिया था और अपने नाम पर 'शकरेश्वरी देवी' नाम रख दिया। देवी मस्तक न होने के कारण कालांतर में यही 'छिन्नमस्ता' कहलायी।

अब हम चाय-नाश्ता के बाद पान-प्रसाद खरीदकर वापसी यात्रा कर चुके हैं। राजविराज में मेरी तीन सालियाँ रहती हैं। उन सबसे मिलना आवश्यक है, नहीं तो इस बार भी उनकी शिकायतें रह जाएँगीं। सो, वापसी यात्रा में हम बड़ी साली मुना के यहाँ उतर आए हैं। चाय-नाश्ता और पारिवारिक वार्ता कर हम विद्या के आवास पर लौट आए हैं। भोजनोपरांत कुछ देर विश्राम कर तीसरी व सबसे छोटी साली सोना के आवास पर आ गये हैं। पारिवारिक वार्ताएँ प्रारंभ हैं, बेटी रेणु को इसमें महारत हासिल है। घण्टों बातें कर चाय-नाश्ता के बाद हम वहाँ का बाजार टहलते हुए वापस आवास पर लौट आए हैं। रात्रि भोजन के बाद विश्राम में चले आए हैं। विद्या के दियादों का परिवार अच्छा-खासा बड़ा है, उन सबमें आपसी प्रेम गाढ़ा है। आज के समय में यह अनूठा उदाहरण है, अनुकरणीय है। सब ने आकर मुझसे भेंट की। मैं भी उन लोगों के घरों तक गया, अपार स्नेह मिला।

राजविराज एक अच्छा शहर तो है, किन्तु मुख्य राजमार्ग से कट जाने के कारण इसका समुचित विकास नहीं हो पाया है। वैसे यहाँ आवश्यकता की सारी चीजें उपलब्ध हैं। उसी रात्रि 8 बजे रेणु तथा शालू के साथ बस से काठमांडू

की यात्रा प्रारंभ हो गयी है। रातभर यात्रा जारी रही।

दूसरे दिन बस 5 बजे प्रातः पहाड़ी मार्ग स्थित एक रेस्टोरेंट के पास रुकती है। हमलोग फ्रेश होकर चाय-बिस्कुट लेते हैं। आधा घंटा बाद पुनः बस चल पड़ती है। हम लोग थोड़ा विलम्ब से 10 बजे पूर्वाह्न काठमांडू बस स्टैंड पर उतर आये हैं। विलंब इसलिए कि पहाड़ी मार्ग पर बस चलाना कठिन कार्य होता है, गति धीमी होती है और जगह-जगह पर जाम के कारण बस को रुकना भी पड़ जाता है। पर धन्यवाद कि अनुभवी ड्राइवर ने हमें सकुशल मंजिल पर पहुँचा दिया है। फिर सिटी बस से कोटेश्वर तथा ऑटो से स्वेहरे चौक उतरकर गोविंद जी के श्वसुर आचार्य दामोदर जी के आवास पर पहुँच गए हैं। भोजनोपरांत थोड़ा विश्राम के बाद अपराह्न 2 बजे हम भक्तपुर दरबार स्क्वायर - भ्रमण हेतु निकल पड़े हैं। तो हम पहले काठमांडू से परिचय प्राप्त कर लें।

**काठमांडू :** यह नेपाल की राजधानी है। 50.8 वर्गकिलोमीटर में फैला हुआ यह नेपाल का सबसे बड़ा नगर भी है। यह समुद्र तल से 1300 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित है। चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा काठमांडू उपत्यका के पश्चिमी क्षेत्र में बसा यह नगर यूनेस्को विश्व धरोहर में शामिल है। संस्कृति और परंपरागत विशिष्ट शैली में निर्मित यहाँ के शानदार भवन तथा पर्यटकों का निरंतर आगमन इसकी विशिष्टताएँ हैं।

संस्कृत शब्द 'काष्ठमंडप' का अपभ्रंश काठमांडू है। मध्य नगर में स्थित काष्ठमंडप में गोरखनाथ जी का एक

मंदिर है, जो एक ही वृक्ष की लकड़ी (काष्ठ या काठ) से निर्मित है। इसी कारण यह काठमांडू नाम से प्रसिद्ध है। वैसे इसका दूसरा नाम 'कात्तिपुर' भी है।

पुराणों के अनुसार काठमांडू उपत्यका एक विशाल तालाब था। चीन के बोधिसत्व मंजुश्री ने अपने चंद्रहास खड्ग से प्रहार कर तालाब को जलविहीन किया था। फिर वे धर्माकर को इस नये राज्य का राजा बनाकर चीन लौट गये। लिच्छवी काल में राजा गुणकामदेव ने विष्णुमती नदी के किनारे 'कात्तिनगर' बसाया था। मल्ल काल (1200 - 1768 ई.) के राजाओं ने यहाँ की कला तथा मंदिरों का विकास किया था। सभी जाति-धर्मों के लोगों ने मिलकर एक संगठित राज्य का स्वरूप दिया। ये ही नेपाली कहलाए, जिनमें कई उपजातियाँ भी हैं।

शाह काल 1768 ई. में गोरखा राजा पृथ्वीनारायण शाह ने मल्ल गणराज्य का अंत कर गोर्खाली नेपाल राज्य की स्थापना की। काठमांडू इसकी राजधानी बनी। इस अवधि में राजप्रासाद तथा महलों के निर्माण में मुगलकाल और पाश्चात्य वास्तुकला का प्रयोग होने लगा था। राणाओं के समय में निर्मित 'सिंह दरबार' विश्व प्रसिद्ध दरबार है, जिसमें प्रधान मंत्री, मंत्रालय, उच्च न्यायालय तथा अन्य कार्यालय अवस्थित थे। इस नगर से आठ नदियाँ बहती हैं, जिसमें बागमती प्रमुख है। 1934 ई. के भूकंप में इस दरबार की काफी क्षति हुई, जिसे जीर्णोद्धार कर पाश्चात्य शैली के भवन, दुकान और बाजार बसाए गए। संप्रति यह नेपाल का प्रमुख व्यावसायिक केंद्र है।

**भक्तपुर दरबार स्क्वायर :**

काठमांडू से 13 किलोमीटर दूर इस नगर में ही भक्तपुर दरबार स्क्वायर है, जो (12 - 15) वीं सदी में नेपाल की राजधानी रही है। यह यूनेस्को विश्व धरोहर में शामिल है। दरबार चार भागों में विभक्त है। दरबार स्क्वायर, तौमधि स्क्वायर, दत्तात्रेय स्क्वायर तथा पौटरी स्क्वायर के रूप में। 55 खिड़कियों वाला महल यहाँ की मुख्य इमारत है। यहाँ अनेक इमारतें हैं, कई मंदिर हैं तथा स्वर्ण निर्मित 'सिंह दरबार' भी है। एक महल को संग्रहालय का स्वरूप दिया गया है। हम 25 रु प्रति व्यक्ति शुल्क देकर संग्रहालय के अंदर प्रवेश कर गए हैं। यहाँ अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ, हैंडक्राफ्ट की तस्वीरें, लिपियों के नमूने तथा नेपाली संस्कृति से जुड़ी अनेक वस्तुएँ संगृहीत हैं। यह नेपाल की सांस्कृतिक राजधानी तथा सर्वाधिक दर्शनीय स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। दुर्भाग्यवश अप्रैल 2015 के भूकंप के कारण यह काफी क्षतिग्रस्त हो गया था, जिसका जीर्णोद्धार चल रहा है। हमने चाय पीकर यहाँ के बाजार से कुछ कलाकृतियाँ खरीदीं और अगला पड़ाव पाटन दरबार स्क्वायर की तरफ ऑटो से चल पड़े हैं। चलने से पहले हमने यहाँ कई तस्वीरें उतारीं।

**पाटन दरबार स्क्वायर :** यह स्थल भी पूर्ववर्ती राजाओं का निवास स्थल है। यहीं से राजा के प्रशासनिक कार्य भी होते थे। यहाँ के महल नेपाली (नेवारी) वास्तुकला के अनुपम उदाहरण हैं। यह प्राचीन स्मारक के रूप में सुरक्षित है तथा एक महल में छोटा-सा संग्रहालय भी है। कुछ मूर्तियाँ, कलाकृतियाँ तथा नेपाली संस्कृति



की झलक यहाँ देखने को मिलती है। यह स्थल भी यूनेस्को विश्व धरोहर में सम्मिलित है। महल के द्वार तथा खिड़कियों में कला के उत्कृष्ट नमूने दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ कई मंदिर भी हैं। सिद्ध नरसिंह मल्ल द्वारा निर्मित 'कृष्ण मंदिर' नेपाली वास्तुकला का सुंदर नमूना है। भीमसेन मंदिर भी दर्शनीय है। हमने यहाँ भी कई तस्वीरें लीं।

अब हम यहाँ से निकल कर पास ही स्थित 'सिंह पोखरा' पहुँचते हैं, जहाँ जल के अंदर मछलियाँ उछलती-कूदती दिखती हैं। इस रमणीक तालाब की मछलियों को हमने चारा खिलाया और उनकी गतिविधियों का आनंद लेते रहे। शाम गहरी होने लगी है, सो ऑटो से हम वापस आवास पर आ गये हैं। फिर भोजनोपरांत शीघ्र विश्राम में चले गए हैं, कल प्रातः पशुपतिनाथ के दर्शन जो करने हैं!

10 नवम्बर की सुबह। तड़के स्नानादि से निवृत्त होकर ऑटो से पशुपतिनाथ मंदिर परिसर पहुँच गये हैं। कतारबद्ध बाबा के सामने खड़े हैं। यहाँ भी मात्र दर्शन-पूजा की सुविधा है, सो बाबा को अपनी श्रद्धा निवेदित करते हैं.....

'चिदानंद संदोह मोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।'

मंदिर में भीड़ काफी है। परिसर के बाहर स्थित बाजार से बेटी ने पान-प्रसाद तथा कुछ पुस्तकें खरीद ली हैं। मैं तब तक बैठ गया हूँ, तो पशुपतिनाथ का परिचय जान लेते हैं।

**पशुपतिनाथ मंदिर :** यह हिंदुओं का पवित्र धर्मिक तीर्थस्थल है। यह बागमती नदी के किनारे 27.42°

उत्तर तथा 85.20° पूर्व पर अवस्थित है। 16वीं सदी में यह मंदिर यूनेस्को विश्व धरोहर स्थल में सम्मिलित है। गंगा की तरह पवित्र बागमती नदी के किनारे यह प्राचीन मंदिर पारंपरिक नेपाली (पैगोडा) शैली में निर्मित है, जिसमें लकड़ी, ताँबा तथा सोना-चाँदी के प्रयोग किये गए हैं। मंदिर वर्गाकार चबूतरा पर 23.7 मीटर ऊँचा है।

इसमें चार दरवाजे हैं, जो चाँदी के चद्दरो से ढके हैं। पश्चिम दरवाजे से प्रवेश होता है। शेष तीन दरवाजे विशेष पर्व के अवसर पर ही खुलते हैं। मंदिर के भीतर दो गर्भगृह हैं, एक नीचे तथा दूसरा ऊपर, जहाँ शिवजी स्थापित हैं। अभिषेक काल को छोड़कर लिंग सदैव सुनहले वस्त्रों से आच्छादित रहते हैं। कर्नाटक के दो विद्वान भट्ट पुजारी शिवलिंग का स्पर्श व पूजा करते हैं। दो भंडारी पुजारी भी सहायक होते हैं, किन्तु वे लिंग स्पर्श व पूजा नहीं कर सकते। वैसे चार-चार पुजारियों की नियुक्ति होती है दोनों समुदाय से, पर बारी-बारी से ही उनकी ड्यूटी लगती है।

**पौराणिक संदर्भ :** एक बार ब्रह्मा-विष्णु ने शिवजी का जयकारा करते हुए निवेदन किया कि वे सदाशिव



का सदैव दर्शन चाहते हैं। इसपर शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा कि एक हजार वर्ष बाद इस ज्योतिर्लिंग को देवतादि पूजा करेंगे। मैं इस स्वर्ण नगरी में हजारों वर्ष तक लिंगरूप में वास करूँगा। फिर म्लेच्छों के आगमन पर पृथ्वी के अंदर गुप्त निवास करूँगा। म्लेच्छों के नष्ट होने पर दस हजार वर्षों तक मृगरूप में विहार करूँगा। पशु रूप में रहने के कारण 'पशुपतिनाथ' के नाम से जाना जाऊँगा। मेरे गुप्त मृगरूप का पता कामधेनु द्वारा लगेगा। भूमि खोदने पर शिवजी तेजोमय चार हाथ ऊँचे ज्योतिर्लिंग के रूप में यहाँ विराजमान हुए। इसी रूप में आज पशुपतिनाथ के दर्शन हो रहे हैं। पशुपतिनाथ, केदारनाथ के शिरोभाग हैं, यानी केदार और पशुपति मिलकर एक ज्योतिर्लिंग बने हैं।



मंदिर प्रातः 5 बजे से 12 बजे तक और संध्या 5 बजे से 7 बजे तक ही खुला रहता है। इसी अवधि में भक्तगण दर्शन-लाभ प्राप्त करते हैं। पश्चिम द्वार पर नंदी की विशाल प्रतिमा स्थापित है। यहाँ सदैव पुलिस बल सुरक्षा हेतु मुस्तैद रहती है। 2015 ई. के भूकंप में मुख्य मंदिर को कोई क्षति तो न हुई, पर अन्य कुछ मंदिर क्षतिग्रस्त हुए हैं, जिनका जीर्णोद्धार किया जा चुका है। पशुपति क्षेत्र में अनेक मंदिर हैं। यहाँ फोटोग्राफी वर्जित है, अतः मंदिर के बाहर से हमने कुछ तस्वीरें ले ली हैं। हम यहाँ से पैदल ही निकलकर मंदिर के बगल से माता गुह्येश्वरी देवी मंदिर की तरफ चल पड़े हैं। रास्ते में गोरखनाथ जी के मंदिर के दर्शन-लाभ सुलभ हो जाता है। उन्हें प्रणाम कर हम माता गुह्येश्वरी देवी मंदिर पहुँच गए हैं। यह महत्त्वपूर्ण शक्तिपीठ है।

**गुह्येश्वरी देवी मंदिर :** पशुपतिनाथ मंदिर से एक किलोमीटर पूर्व बागमती नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित यह शक्तिपीठ अपनी तांत्रिक पूजा के लिए अति प्रसिद्ध है। 27.42° उत्तर तथा 85.21° पूर्व पर अवस्थित मंदिर के मध्य भाग में देवी की पूजा कलश रूप में होती है। यह सोने-चाँदी की सतहों (चादरों) से ढकी रहती है। यह कलश एक पत्थर पर अवस्थित है, जो भूगर्भीय जलप्रपात से जुड़ा है। इस आदिशक्ति देवी मंदिर को 17वीं सदी में राजा प्रताप मल्ल ने बनवाया था। वैसे तो प्रतिदिन यहाँ भीड़ रहती है, किन्तु नवरात्रि के अवसर पर यहाँ अपार भीड़ हो जाती है। हम भी माता की पूजा-अर्चना करते हैं...

‘आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं  
करोमि दुर्गे करुणविशि।  
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः  
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥’

चूड़ी-सिंदूर-बद्धी और प्रसाद खरीदकर एक रेस्टोरेंट में बैठ जाते हैं। भूख लग गई है, सो चाय-नाश्ता कर पुनः आगे बढ़ते हैं।

अब हम यहाँ से निकलकर धरहरा पहुँचते हैं। यहाँ का मंदिर तथा स्तूप दर्शनीय है। कुशी नगर स्थित यह ऐतिहासिक बुद्ध मंदिर है, जहाँ 5वीं सदी की 21 फीट लंबी बुद्ध की लेटी हुई प्रतिमा (जो खुदाई से प्राप्त है) दर्शनीय है। यहाँ आकर बौद्ध-दर्शन का स्मरण हो रहा है। किन्तु अफसोस कि भूकंप ने इस मंदिर को भी क्षतिग्रस्त कर दिया था, पर अब इसका जीर्णोद्धार हो गया है।

अब हमारे कदम सुनधरा (तीन धरा) की ओर बढ़ चले हैं, जो अभी मृतप्राय हैं। यह भी नेपाल का दर्शनीय स्थल है। हम लोग वापस आवास पर आ गए हैं। भोजनोपरांत विश्राम कर रहे हैं। पुनश्च अपराह्न 2 बजे वसंतपुर दरबार (हनुमान ढोका दरबार) की यात्रा पर निकल गए हैं।

**वसंतपुर दरबार स्क्वायर :** नारायणहिती दरबार से पूर्व यही राजाओं का निवास था। इसे राजा पृथ्वीनारायण शाह ने बनवाया था। यहाँ के महल, मंदिर तथा प्रांगण दर्शनीय हैं। यहाँ का एक महल संग्रहालय में परिवर्तित कर दिया गया है, जो नौ मंजिला है। राजघरानों से संबंधित वस्तुएँ यहाँ संग्रहीत हैं तथा फोटो गैलरी भी है। सभी वस्तुएँ अद्भुत हैं। इस दरबार में ग्यारह महत्त्वपूर्ण चौराहे विभिन्न नामों

से हैं। प्रवेशद्वार पर हनुमानजी की मूर्ति स्थापित रहने के कारण ही इसे ‘हनुमान ढोका दरबार’ भी कहा जाता है। 2015 के भूकंप में यह परिसर भी क्षतिग्रस्त हो गया था, जिसका जीर्णोद्धार कार्य अब भी जारी है। हमने मंदिरों के दर्शन तथा शुल्क देकर संग्रहालय के भी अवलोकन कर लिए हैं। फोटोग्राफी लेकर हम नारायणहिती दरबार की ओर ऑटो से चल पड़े हैं।

**नारायणहिती दरबार स्क्वायर :** यह राजा महेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव द्वारा (1963-1969 ई.) के बीच निर्मित है। यह नेपाली वास्तुकला का बेजोड़ नमूना है। विभिन्न नामों से युक्त 52 कमरे इस महल में हैं, जहाँ निवास के अतिरिक्त प्रशासनिक कार्य, बैठक, गुप्त मंत्रणा, घोषणा व अतिथिगृह के भी कमरे हैं। राजा वीरेन्द्र, महेन्द्र तथा ज्ञानेन्द्र का यह निवास-स्थल रहा है। दरबार के महलों की दीवारें ईंट निर्मित तथा छत, लकड़ी, टीन एवं खपड़ा से निर्मित है। इसके खिड़की-किवाड़ लकड़ी से बने हैं, जिस पर सुंदर नक्काशी है। यहाँ अब भी राजा ज्ञानेन्द्र पर हुए गोली-कांड के अवशेष दिखते हैं। 2008 ई. में इसे संग्रहालय में परिवर्तित कर दिया गया है। यहाँ से हम ऑटो से स्वयंभू बौद्ध स्थल पहुँचते हैं, जो 6 किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है।

**स्वयंभूनाथ :** यह भव्य बौद्ध स्थल है, जो विश्व धरोहर स्थल भी है। बौद्धनाथ का स्तूप 36 मीटर ऊँचा है। स्वयंभूनाथ पहाड़ियों के मार्ग में एक राष्ट्रीय संग्रहालय भी है, जिसमें पुरानी कलाकृतियाँ, निवर्तमान राजाओं के स्मृति-चिह्न, हथियार, पुरानी प्रतिमाएँ,

चित्र, वॉल पेंटिंग्स, गुड़िया तथा सिक्कों का संग्रह आदि है। यह नेपाल का प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है।

इसके अतिरिक्त नेपाल में अशोक विनायक मंदिर, जगन्नाथ मंदिर, दरबार मार्ग, आकाश भैरव मंदिर तथा नगर कोल पर्वत चोटी पर (हिल स्टेशन) आदि भी दर्शनीय स्थल हैं, जहाँ हम समयाभाव में न जा सके। वापस आकर भोजनोपरांत हम काठमांडू बस स्टैंड (कलंकी) आकर रात्रि 8 बजे बस में बैठ गये हैं।

रातभर यात्रा जारी रही। दूसरे दिन हम 7 बजे प्रातः इटहरी बस स्टैंड पहुँच गये हैं। गोविंदजी अपने मित्र सहित स्टैंड पर उपस्थित हैं, जिनके साथ हम उनके आवास पर पहुँचकर विश्राम करते हैं। भोजनोपरांत फारबिसगंज की वापसी यात्रा प्रारंभ हो गई है। 11 नवंबर को 4 बजे अपराह्न सकुशल निज आवास पहुँच कर विश्राम में हैं। आँखें मूँदी हैं, पर पलकों पे नींद नहीं। सोचने लगा हूँ...कैसी आनंदमयी यात्रा का सुअवसर नसीब हुआ...न केवल

आध्यात्मिक - सांस्कृतिक यात्राएँ पूरी हुई, अपितु पारिवारिक - कौटुंबिक यात्राएँ भी पूर्ण हुई... बहुत दिनों के बाद एक साथ मिलन का सुखद अवसर मिल पाया...समयाभाव के कटु विष को सुखद मिलन के अमृत ने पूरी तरह मधुमय कर दिया है... संपूर्ण वातावरण अमृतमय हो गया है...और...और...यही सब सोचते हुए कब नींद आ गयी, पता ही न चल पाया। ...यही तो यात्रा है...और यात्रा का आनंद भी...।



## लाल देवेन्द्र कुमार की कविता

बहुत कुछ लिखना शेष है!

बहुत कुछ लिखना शेष है!  
चाहता हूँ उन सब पर लिखूँ  
जो कभी मखमली चदर पर न सोएँ हों  
न ही उन्हें रातों में आते हों  
रेस्त्रां में खाने के सपने  
मेरे शब्दों में समाया हो सत्य का प्रतिमान  
शब्दों से करना चाहता हूँ आह्वान  
उन दबे-कुचले लोगों का  
लिखना चाहता हूँ दास्तान...

कहना चाहता हूँ शब्दों से  
उनका भूत, भविष्य व वर्तमान  
जिनके पैर पत्थरों से कुचलकर  
बना दिए जाते हैं पंगु  
जिनके मस्तिष्क में अभिशप्त लावा  
ढूस-ढूस कर भर दिया जाता है  
कि आने वाले कई वर्षों तक  
वैसे ही बने रहें लाचार



सिर्फ अपने वोट देकर बनाते रहें सत्ता  
परिवर्तन के कभी न आए उन्हें विचार...

मैं जब तक रहूँगा, लिखता रहूँगा  
अपने शब्दों से उनके अंदर  
जगाऊँगा ज्वालामुखी  
जो फट कर दे तहस-नहस  
और हो जाए परिवर्तन  
उस निरंकुशता और अन्याय के खिलाफ  
जो सदा ही रोकते हैं रास्ते  
उन दीनहीन वंचित लोगों को आगे बढ़ने से

न कर सका ऐसा तो निश्चित ही  
अगले जन्म में फिर कवि ही बनूँगा  
फिर से उनके लिए लड़ाई लड़ूँगा...

सम्पर्क :

पता : मुहल्ला - नई बस्ती बरगदवा  
(निकट गीता पब्लिक स्कूल),  
पोस्ट - गांधीनगर, जिला - बस्ती  
(उ.प्र.) - 272001  
मोबाईल : 7355309428  
ईमेल : laldevendra204@gmail.com

## सतीत्व बनाम स्त्रीत्व



### शिक्षा

एम-एस. सी

(वनस्पति शास्त्र) बी एड्

200 से अधिक रचनाएँ विभिन्न

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित

विभिन्न विधाओं की चार पुस्तकें

प्रकाशित

व्यंग्य संग्रह 'बचते- बचते

प्रेमालाप' के लिए कादम्बरी

सम्मान।

सम्प्रति

'संपादक' त्रैमासिक ई- पत्रिका

-साहित्य सरोवर

जीवविज्ञान शिक्षिका

संपर्क

चित्रांश कॉलोनी

सगू डीजल वाली गली

मऊ चुंगी, टीकमगढ़

(मध्य प्रदेश) 472001

### ★ अनीता श्रीवास्तव

“

हैलो!” उधर से एक अपरिचित स्वर था। कंचन के एक हाथ में आटा लगा था, दूसरा हाथ मोबाइल सहित कान पर लगाए वह किचेन से बाहर आ गई।

“क्या हो रहा है जानेमन?” सुन कर कंचन के हाथ-पाँव फूल गए। दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। ऐसे मौकों पर अक्सर कुछ सूझता नहीं। उसे भी नहीं सूझा। अकबकाकर उसने फोन काट दिया।

जा ..ने ..मन। कुछ अलग-सा लगा। जैसे किसी ने लिहाफ के धागे तोड़ एक ही वार से रुई का रेशा-रेशा हवा में उड़ा दिया हो। एक-एक रेशा, एक-एक शब्द। वह शब्दों का साथ गहे दूर तक निकल आई। दूर, जहाँ खूबसूरत वादियाँ थीं, नशीली हवा चल रही थी। ऊँचे और मोटे तने वाले दरख्त भी थे जिनके पीछे छुपा जा सकता था। दूर क्षितिज पर धरती-आकाश का आभासी मिलन देख यथार्थ में रोमांचित हुआ जा सकता था। उसी रोमांच को भरकर बहके हुए पंछी उस ओर चले जा रहे थे। धरती पर दो जोड़ी पैरों के निशान थे...जो जानबूझकर न तो एक-दूसरे से आगे निकलते थे न ही पीछे छूटने को तैयार थे।

छूटने को तो वक्त भी तैयार नहीं था। थम जाना चाहता था। बूँद बराबर समय में नदी बराबर उम्र बिताना चाहता था। पलों की ताकत के सामने उम्र असहाय लगने लगी थी। उसने अपने बालों में लगी पिन निकाल दी और बाल बिखेर कर पंखे के नीचे बैठ गई। ये खुद की अंगुलियाँ थीं, जिन्हें वह बालों में नरमी से फिराए जा रही थी। उसने आँखें बंद कर लीं। दो जोड़ी पैर अभी भी साथ-साथ चल रहे थे। अगले ही पल वह कुछ गुनगुना रही थी। कोई मीठा गीत जो उसकी आत्मा का गान था- “जो नश्वर देह पर उम्र के प्रभाव से अछूता जान पड़ता था”..उसने खुद को इस तरह उड़ेल दिया था कि उसका स्वर ही उसका वजूद बन गया था। उसने हाथ से अपने कपोलों को सहलाया और बालों की लट, जो आधी सफेद हो चली थी, उसे कान के पीछे धकिया दिया।

जब वह कॉलेज में थी, इसी तरह के सपने देखा करती थी।

“कुमुद, मेरा मन पढ़ने में नहीं लगता।”

उसने अपनी हितैषी और जानकार समझकर कुमुदनी से कहा था। कुमुदनी

फिर.... एक दिन.... वही हुआ जो सदैव होता आया है। भावनाओं के नाजुक परिदे कल्पनाओं के पंख लगा कर गगन में उड़ते तो हैं, मगर एक ही झटके में संसार उन्हें निर्ममतापूर्वक यथार्थ के धरातल पर ला पटकता है। संसार भावनाओं पर नहीं चलता। उसका विवाह रविकिशन से होना तय हुआ। इससे पहले देखने-दिखाने की रस्म अदायगी हुई। उस घर के छोटे से ड्रॉइंगरूम के पर्दे बदल दिए गए। माँ ने ललिता चाची के घर से टेबल-क्लॉथ मँगाया था, जिसे उन्होंने अपने कॉलेज के दिनों में होमसाइंस के प्रेक्टिकल के लिए बनाया था।

ने इस बात को लेकर उसकी इतनी खिंचाई की कि उस दिन से बेचारी अपना हाले-दिल सात तालों में बंद रखने लगी। उसके घर के सामने, सड़क के उस पार कम्पनी बाग था। वह अक्सर सोचा करती एक दिन वहाँ किसी के साथ जाएगी, जो उससे अच्छी लगने वाली बातें करेगा। उसकी बड़ी-बड़ी गहरी आँखों की किसी झील से तुलना न भी करे तो भी साधारण शब्दों में तारीफ तो कर ही देगा। उससे उसकी 'हाँबी' पूछेगा या शायद गाना सुनाने को कहेगा। वह उससे आइसक्रीम या चाट खाने को कह सकता है। कंजूस होगा तो फूल भी दे सकता है। वहीं लगे हैं। इतना सब होने के बाद जब वह आने लगेगी, कल फिर आने का वादा बिलकुल नहीं करेगी। वह बेवकूफ थोड़ी है! वह उसे मम्मी से मिलवाने की जिद करेगी। उसे लड़के के लिखे लंबे शायरी वाले प्रेम-पत्रों का इंतजार रहेगा। इन पत्रों की भाषायी गलतियों पर वह कभी ध्यान नहीं देगी। वह केवल भावनाओं को समझेगी।

फिर.... एक दिन.... वही हुआ जो सदैव होता आया है। भावनाओं के नाजुक परिदे कल्पनाओं के पंख लगा कर गगन में उड़ते तो हैं, मगर एक ही झटके में संसार उन्हें निर्ममतापूर्वक यथार्थ के धरातल पर ला पटकता है। संसार भावनाओं पर नहीं चलता। उसका विवाह रविकिशन से होना तय हुआ। इससे पहले देखने-दिखाने की रस्म अदायगी हुई। उस घर के छोटे से ड्रॉइंगरूम के पर्दे बदल दिए गए। माँ ने ललिता चाची के घर से टेबल-क्लॉथ मँगाया था, जिसे उन्होंने अपने कॉलेज के दिनों में होम साइंस के प्रेक्टिकल के लिए बनाया था। माँ ने ट्रंक में से स्टील के चमचमाते बर्तन भी निकाले थे, जिनमें मेहमानों को परोसा-खिलाया जाना था। कंचन, बुआ की साड़ी पहन कर रविकिशन और अपने भावी ससुराल वालों के सामने नमूदार हुई। कुछ औपचारिक बातों के बाद दोनों को अकेला छोड़ दिया गया। रविकिशन ने कुछ बात छोड़ी.... बल्कि प्रश्न किए। कंचन ने प्रश्नों के उत्तर

दिए। प्रश्न-उत्तर का सत्र अच्छा चल रहा था। हृद तो तब हो गई जब उससे कंचन शब्द का अर्थ पूछा गया। बातें और भी हुई मगर उनमें से कोई भी बात उस बात जैसी नहीं थी, जो कम्पनीबाग वाले खयाल में हुई थी।

रविकिशन सचमुच एक अच्छा लड़का था। 'न' करने की कोई वजह ही नहीं थी। सुबह माँ ने पूछा, "लड़का कैसा लगा?"

कंचन चुप रही। उसे पता था दरवाजे के उस तरफ पापा खड़े हैं.... और उसकी चुप्पी को 'हाँ' समझ लिया गया। माँ ने उसे हर्षातिरेक में गले लगा लिया था। कंचन को समझ नहीं आ रहा था उसे खुश होना चाहिए था या नहीं। लेकिन माँ खुश थीं। पहले ही प्रयास में बेटी का रिश्ता तय हो गया था। उम्र भी अधिक नहीं हो पाई थी। सब समय पर हो रहा है। माँ ने गहरी साँस ली और मन ही मन ठाकुर जी का धन्यवाद किया।

पापा के ऑफिस जाने का समय हो गया था। माँ रसोई से हाथ में पापा





का टिफिन ले कर आ रहीं थीं। कंचन को देखा तो उसे ही पकड़ा दिया। कंचन ने यंत्रवत टिफिन लाकर पापा के हाथ में पकड़ा दिया। कोई और दिन होता तो वह पहले टिफिन खोल कर देखती, सब्जी क्या बनी है? या शायद पूछ ही लेती। लेकिन आज उसने ऐसा नहीं किया। मन नहीं था। बिना टिफिन खोले और माँ से कुछ पूछे ही जैसे उसे सब पता था। उसे पता था कि टिफिन के सभी खंडों में वही भरा होगा जो रोज भरा जाता है..... जो हमेशा खाया जाता है। जिसका हमेशा से चलन रहा है.....कुछ भी नया सम्भव नहीं।

उसका घर-संसार रविकिशन के साथ अच्छा चल रहा था। कर्ण-पीयूष स्कूल जाने लगे तो उसे थोड़ा समय मिलने लगा। रविकिशन वक्त के पाबंद हैं। समय पर ऑफिस जाना। समय पर घर आना। सोना-जागना, खाना-पीना, सब समय पर। समय पर सारे काम करने के बाद भी तो समय नहीं मिलता।

आप समय का लाख मान रखिए। समय नहीं पसीजेगा। छन्नी में बची चाय-पत्ती से चाय की तरह बूँद-बूँद रिसता ही चला जाता है। समय ने कभी किसी का लिहाज नहीं किया। कंचन का भी नहीं। पता ही नहीं चला कब चौदह साल हो गए, उसके और

रविकिशन के साथ को। अब तक वह कम्पनीबाग वाले खयाल से खुद को मुक्त हुआ समझने लगी थी, क्योंकि न तो उस खयाल को उसने याद किया न भुलाया ही। बहुत बार ऐसा हुआ जब किसी सड़े की शाम रविकिशन उसे पार्क ले कर जाते, बच्चे झूला-वूला झूलते फिर सी-सा पर खेलने चले जाते। रविकिशन चहलकदमी करते। वह भी सिर्फ दिखने के लिए, हकीकत में वो वहाँ से निकल कम्पनीबाग वाले खयाल में चली जाती। या कम्पनीबाग ही चलकर उसकी आँखों में आ जाता, मगर जो कभी दिखाई नहीं दिया था, खयालों वाले उस लड़के का इंतजार करने में उसे डर लगता। वह बड़ी कठिनाई से उसकी जगह रविकिशन को बिठा पाती। लेकिन लगातार अभ्यास के बाद ये अब उसके वश में हो गया था।

उस दिन सोमवती अमावस्या थी। उसने तुलसी के एक सौ आठ परिक्रमा लगाए। बीच-बीच में वह आँख बंद करके विष्णु भगवान का ध्यान करती जाती थी। हर एक चक्कर पूरा होने पर एक चिरोंजीदाना कटोरी में रखना होता था। उन दानों में से जो पहले ही गिनकर रख लिए गए थे। कटोरी में दाना डालते समय उसकी नज़र अपने पैरों में लगे महावर और बिछिये पर पड़ गई। उसके अपने ही पायल के घुँघरू बज उठे। उसे लगा वह दुल्हन से कहाँ अलग है! कम्पनीबाग वाला खयाल उसे फिर अपनी गिरफ्त में लेने लगा। वह उसी के पीछे-पीछे चल रही है। वह उसकी संगिनी है खयाल, आते ही उसने सिर का पल्लू थोड़ा और आगे खींच लिया। एक सौ आठ फेरी पूरी होते-होते न जाने कितनी बार इस खयाल ने उसका सतीत्व खंडित किया।

उसे अब अपनी पूजा छिपाने लायक कर्म लगने लगी थी। घर लौटकर उसने फौरन कपड़े बदल लिए। गाउन पहना और जरूरी कामों में लग गई। कितनी मेहनत की थी सोमवती अमावस्या की पूजा में! कितनी मेहनत की थी घर को घर बनाने में! स्त्रीधर्म को निभाने में उसने कब कमी रखी थी! फिर ये कम्पनीबाग का खयाल, जो सिर्फ खयाल है, उसका पीछा क्यों नहीं छोड़ता?



## राग—विराग

★ संजय कुमार सिंह



## जन्म

21 मई, 1968 ई.  
मधेपुरा, बिहार।

## शिक्षा

एम.ए., पी-एच.डी (हिन्दी) ।  
रचनात्मक उपलब्धियाँ  
देश की अनेक प्रतिष्ठित  
पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं अन्य  
विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित।  
विभिन्न विधाओं की डेढ़ दर्जन से  
अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

## सम्प्रति

प्रिसिपल, डी.एस.कॉलेज  
कटिहार-854105  
9431867283/6207582597

दि

लेसर ने छककर भोजन किया। पुलाव और मीट। आज कमली के काम से उसका जी खुश हो गया था। खाना खाने के बाद उसने बीड़ी सुलगायी, फिर पूछा, 'साहब के घर से इतना सारा खाना तुम कैसे ले आयी? क्या डोंगी ने मुँह मार दिया था?'

'तुम पागल हो गए हो क्या?' कमली ने बिगड़कर कहा, 'कीचन में डोंगी कहाँ से आएगा?'

'फिर?' उसने अपनी शंका व्यक्त की, जो वाजिब थी।

'तुम खाने से मतलब रखो...' वह बोली, 'बतकुत्थन मत करो...'

'काहे, पूछ दिया तो मिर्ची लग गयी?' दिलेसर ने तल्लव अंदाज में कहा, 'अब तुम्हें सच बताना होगा।'

'सच जानकर क्या करोगे?' उसने कहा, 'मैडम ने कहा, सारा खाना उठाकर ले जाओ। मैंने मना कर दिया। तब वह बिगड़ कर बोली - 'गटर में फेंक दो, कुत्ते को दे दो...'

'क्यों?' दिलेसर को कुछ समझ में नहीं आया। खाना वाकई स्वादिष्ट था। बीड़ी के कश ने और उसका मूड बना दिया था।

'मैडम से झगड़ा हो गया था साहब का...'

'तो?'

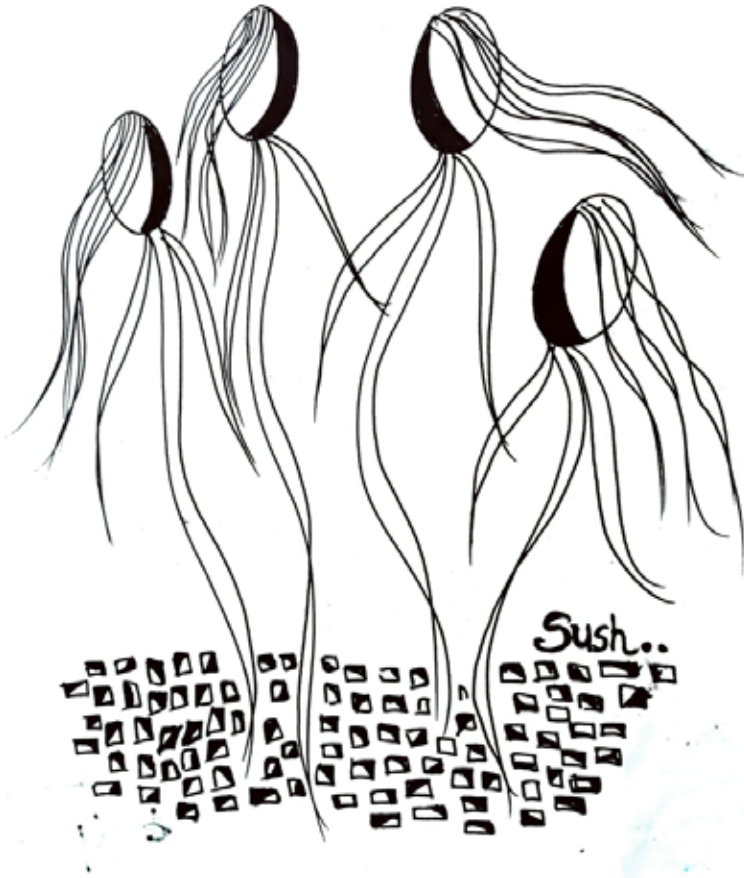
'उन्होंने होटल से खाना मँगाकर खा लिया।' वह बर्तन समेटती हुई बोली, 'फिर मैडम भी नाराज हो गयी। घर में भंड हो गया। डॉली और पिंटू ने भी बाहर से खाना का आर्डर दे दिया...।'

वह मुस्कराया, 'तब तो रोज लड़ा करें और तुम रोज मीट और पुलाव लाया करो...।'

'कैसी बात बोलते हो, उनके घर में अबोला है और तुम पुलाव और मीट के लोभ में पड़े हो? चलो जाओ अपने काम पर...' वह बच्चे की राह तकते हुए बोली। दोनों बच्चे के स्कूल से आने का टाइम हो रहा था।

दिलेसर रिक्षा लेकर निकल गया। अब वह रात में आएगा और वह बच्चों को खिलाकर खुद बचा-खुचा खाएगी और तीनों घरों में देर शाम तक एक-एक घंटे काम करेगी। उसकी रोज की दिनचर्या यही है। वह काम से थकती है कि नहीं, उसे पता ही नहीं चलता। पेट जो न कराए...।





---

कमली को ऐसे दिलेसर की बात बहुत बुरी नहीं लगी। वह सोचती है तो हैरान रह जाती है, तीनों घर बड़े अफसरों के। बंगला, गाड़ी और स्टॉफ। सुंदर साहब के सरकारी आवास में किस चीज की कमी है, पर गुड्डी मैडम और साहब में हमेशा तनातनी रहती है। बच्चे पढ़ने से ज्यादा मोबाइल पर गेम खेलते हैं... कोई किसी को कहने वाला नहीं। सबकी अपनी दुनिया, कभी चाय का कप ठंडा हो जाता है, तो कभी नाश्ता पड़ा रह जाता है। सात में से पाँच दिन होटल का खाना... सबके मोबाइल में पैसा है।

.. दूसरे घर की भी वही कहानी... बच्चे विदेश में... यहाँ साहब चमन लाल और सुरेखा मैडम एक ही बंगले में दस साल से अलग-अलग। खुद सुरेखा मैडम ने उसे बताया है कि उनके और साहब के बीच पति-पत्नी वाला संबंध नहीं है... बस रिश्ते का लिहाज ढो रहे हैं... साहब क्लब जाते हैं, तो मैडम भी जाने कहाँ निकल जाती है... तीसरा घर व्यंकटेश साहब और नंदिनी मैडम का... समझो वही अलगाव और वही दूरी... कमली क्यों पूछे इन लोगों से कुछ... और क्यों कहे इस घर की बात उस घर से... ?

कई बार तो इन अमीरों की दुनिया से उसे अपने लोगों की जिंदगी अच्छी लगती है... मरद शराब पीकर लौटता है... मार-कूट करता है... हल्ला-गुल्ला करता है, फिर लुढ़क जाता है... और फिर अँधेरे में जागकर बाँहों में समेट लेता है... मन का सारा रोग-संताप पानी बन जाता है... पर इन लोगों को देखो फ्रीज में रखे मुर्गे की तरह अकड़े रहते हैं... मैडम अलग टर् और साहब अलग फर्... पत्थर की तरह अलहदा... कई बार तलाक तक की नौबत आ जाती है...

‘क्या सोच रही हो?’ दिलेसर ने रिकशा लगाकर घर में घुसते हुए कहा, ‘जब देखो किस गुन-धुन में रहती हो?’

‘तुम्हारा इन्तजार कर रही थी...’ वह खटिया से उठते हुए बोली, ‘चलो, आओ मुझे भी भूख लगी है...’ ‘बच्चे खाकर सो गए?’

‘हाँ...’

‘अच्छा खाना लगाओ...’ वह कल पर से हाथ-मुँह धोकर आ गया। कमली ने खाना लगा दिया। सब्जी-भात। दिलेसर खाने लगा।

अचानक उसने पूछा, ‘काम पर गयी थी...?’

‘हाँ गयी थी...’

‘सुलह हुई?’

‘अभी तीन दिनों तक चलेगा...’

सुंदर साहब का बंगला तो बहुत बड़ा है..’ वह बोला, ‘आज मैं गया था सवारी लेकर डी.आई.जी. कॉलोनी... तुम्हें डर नहीं लगता है अंदर जाते...? गेट पर पुलिस के लोग रहते हैं...’

‘नहीं...’ वह हँसी, ‘बाकी लोग

बेल बजाकर बाहर रह जाते हैं... अंदर की बात बाहर नहीं जाती... किसी की हिम्मत नहीं है कुछ पूछने की... पर मैं किसी से नहीं डरती..'

'डींग मार रही हो...' दिलेसर ने आश्चर्य से कहा।

'डींग क्यों मारूँगी? सच्ची कह रही... मैं तो अंदर रहती हूँ,' कमली ने कहा, 'पर काम से मतलब रखती हूँ... किसी बात में दखल नहीं देती...साहब कुछ कहे तो चुप और मैडम कुछ कहे तो चुप... बच्चे को भी कुछ नहीं बोल सकती...'

से अलग-अलग हैं...मतलब .... उनमें पति-पत्नी वाला संबंध नहीं है...' उसने रहस्य पर से पर्दा उठाते हुए कहा, 'अब बोलो..'

'झूठ! बिल्कुल झूठ...' दिलेसर बिदक गया, 'ऐसा हो सकता है क्या? तुम कौसी उल्टी बात बोल रही हो...'

'यह सच है, मुझे सुरेखा मैडम ने बताया है...' उसने परतीत से कहा, 'साहब का किसी ऑफिसवाली से चक्कर है... लोग तो कहते हैं सुरेखा मैडम की भी अपनी दुनिया है...'

'हे भगवान! कुछ लाज-शरम

'नहीं चलो...'

'सो क्या है?'

'कुछ नहीं, चलो...'

'कहा तो, थोड़ी देर में रसोई साफ कर आती हूँ...' वह हँसती हुई बोली, 'उमर हो गयी है, मगर आदत नहीं सुधरी..'

'अमीर लोगों की बान मत पकड़ो...' उसने खींचते हुए कहा, 'अपने पास गरीबी है, पर इज्जत है... मैं कितनी मोहब्बत करता हूँ तुझसे?..'

'मुहब्बत करते हो? मरद मुहब्बत करता है...'

'और क्या?' दोनों कमरे की ओर चले गए।

....

आज नदिनी मैडम और व्यंकटेश साहब के बीच मामला गरम था। साहब की दोस्त खुदेजा मैडम आ गयी थी। घंटों आव-भगत के बाद साहब ने उसे विदा किया। वे खुश थे। मगर नदिनी मैडम का मूड भड़का हुआ था।

'अब घर में बुला रहे हैं इन लोगों को?'

'शटअप!' साहब ने बिगड़ कर कहा, 'वह एक सोशल एक्टिविस्ट है... बड़े अफसर की वीवी हो तो स्टेटस के हिसाब से शालीन आचरण करो...तमाशा मत करो।'

'और आप बहाना बना कर आवारागर्दी करते रहिए...' वह बमकी, 'मैं कहती हूँ वह आई क्यों बगले में...? उसकी यह हिम्मत?'

कमली को लगा, कहीं साहब हाथ नहीं उठा दें...वह न चाहते हुए नदिनी मैडम को किचन की ओर संभाल

कई बार तो इन अमीरों की दुनिया से उसे अपने लोगों की जिंदगी अच्छी लगती है... मरद शराब पीकर लौटता है... मार-कूट करता है ....हल्ला-गुल्ला करता है, फिर लुढ़क जाता है...और फिर अँधेरे में जागकर बाँहों में समेट लेता है.... मन का सारा रोग-संताप पानी बन जाता है.... पर इन लोगों को देखो फ्रीज में रखे मुर्गे की तरह अकड़े रहते हैं... मैडम अलग टर्न और साहब अलग फर्न... पत्थर की तरह अलहदा..कई बार तलाक तक की नौबत आ जाती है....

'फिर इतना जानती कैसे हो?' भोजन करने के बाद भी वह बैठा था। कमली उसके मन को पढ़ रही थी।

'अरे! बहरी हूँ कि अंधी?' वह बोली, 'बड़े लोगों के जीवन में दिखावा है, पर दुख-दर्द वहाँ भी कम नहीं हैं... उनकी बात बताऊँगी, तो होश उड़ जाएँगे... कहीं बोल दोगे...'

'अरे ! मैं क्यों बोलूँगा...' दिलेसर ने कहा, 'मुझे तेरी इज्जत का खयाल नहीं...'

'तो सुनो...चमन साहब और सुरेखा मैडम एक बंगले में रहते हुए दस वर्षों

नहीं इन लोगों में...' दिलेसर ने माथा ठोका, 'मुझे तो अचरज हो रहा..'

'लोग आवें तो दिखावा ऐसा करेंगे कि हवा नहीं लगे...' वह हँसी।

'चलो, अब सोएँ...ये अमीर लोग लंपट होते हैं, अपनी बीवी को छोड़कर जहाँ-तहाँ मुँह मारते रहते हैं... ये केवल मुँह से बड़ी बात करते हैं और चेहरे पर इज्जत की सफेदी पोते रहते हैं...इनके रंग-ढंग से दुनिया की चाल खराब हो रही...'

'तुम चलो मैं आती हूँ...' वह बरतन समेटती हुई बोली।



कर ले गयी और बोली, 'मैडम भूल जाओ, गुस्सा थूको... साहब को हिसाब से संभालो... हम औरत लोगों का यही दुख है... हमारे समाज में मरद को नहीं, लोग औरत को दोष देते हैं...'

'मैं' पूछती हूँ वह आयी क्यों?' 'अब आपने कह दिया, हो गया।' 'अच्छा तुम जाओ....' वह जब्त होकर बोली।

'जी...'

'सुनो...'

'क्या?' वह अकबकायी।

'कहीं, बोलोगी नहीं...'

'नहीं मैडम!' उसने होठों पर उँगली रखते हुए कहा।

'आज मैं इस साहब की बोलती बंद कर दूँगी... जीना मुहाल कर दूँगी...' उसने गुस्से से कहा, 'अब वह जमाना गया... औरत कितना सहेगी... उसके पास सब राइट है... मैं कोई गँवार-जाहिल नहीं हूँ कि सब सह लूँ...'

वह मन ही मन बुदबुदायी, 'लड़ो, खूब लड़ो... पर मरद से जीतोगी नहीं...'

....

कमली निकल गयी। सुंदर साहब की कोठी में शांति थी। उसने बरतन वाश किया, घर साफ किया। चाय देकर निकल गयी। चमन साहब की कोठी में सिर्फ सुरेखा मैडम थीं। वह सिरदर्द से कराह रही थीं। बर्तन साफ करने के बाद उसने नवरतन तेल से उनका सिर दबाया। मालिश से उन्हें राहत हुई तो चाय बनाने कहा। जाते समय उन्होंने दो सौ का नोट दिया। कमली खुश हो गयी। रास्ते में उसने मछली खरीदी। एक बार उसने भी दिलेसर की तरह सोचा... और

फिर सिर झटक दिया। नहीं, नहीं वह क्यों चाहेगी ऐसा-वैसा... भगवान सब का भला करें... उनके पीछे गरीबों का भी पेट चले...

----

बच्चे मछली-भात खाकर सो गए। बिन्नी नौ साल की है और राजू सात साल का। घर को संभालते हुए कमली ने कभी दिलेसर पर भरोसा नहीं किया। वह मनमौजी आदमी। उसकी फितरत ऐसी कि मस्त हुआ तो कह दिया, आज हड़ताल थी। रोड जाम था। रिक्शा नहीं चला। कभी पैसा देता है और कभी नहीं। एक बार रिक्शा जुआ में बंधक लगा आया तो उसने छुड़ाया, ...पर घर तो आता है, मूड ठीक रहे, तो अपनी गलती मानता है। एक-दो बार मार-पीट किया तो घंटा भर बाद हाजिर। एक दिन किसी बात पर वह जहर खाने पर आमादा हुई तो पैर पर गिर पड़ा। फिर वह भी पसीज गयी। दुख है गरीब के जीवन में... मगर सरस तो है जीवन! यह नहीं कि साहब और मैडम लोगों की तरह मुँह फुला कर बैठे हैं, तो बैठे हैं या फिर बात-बात पर लड़ते झगड़ते रहें, यहाँ तो सिर भी फट जाए तो अगले पल मेल-जोल कर लेते हैं... कितना भी अकाल-अभाव रहे, मन-मेघ झमाझम बरसने लगता है... यह तो है जिनगानी... गरीबों की अकथ कहानी...

'क्या बना है?.' दिलेसर ने रिक्शा लगा कर पूछा।

'मछरी...' वह मुस्करायी।

'आज किस घर में भंड हुआ?' उसने आशंका जतायी।

'रोज-रोज भंड होगा क्या?'

उसने छमक कर कहा, 'चलो पैसा निकालो...'

'आज रिक्शा नहीं चला।'

'तब क्या चला दारू कि जुआ?'

वह तल्लव हुई।

'दोनों...' वह निर्लज्ज की तरह बोला।

'तुम सुधर जाओ...' वह बमकी।

'चल खाना लगा'

'कल हप्ता है...' वह ठमककर बोली।

'तो मैं क्या करूँ?' वह तिड़का।

'तुम पैसा दोगे...' वह गरम हुई,

'और क्या करोगे? दिन भर ऐसे ही घूमते हो क्या...?'

'पैसे क्या पेड़ में फलते हैं...'

दिलेसर नशे में था। उसने हाथ चला दिया। कमली खाना देकर कमरे में चली गयी। उसे लगा औरत का दुख बराबर है, चाहे साहब की कोठी हो कि गरीब का घर। मरद की जात एक जैसी... दिलेसर खाकर आया तो नशा कुछ-कुछ टूट चुका था। वह कमली की बगल में सो गया... और उसे सहलाने लगा। कमली बिफरी, 'पहले हाथ उठाएगा... फिर प्यार करेगा?... साहब लोग की निंदा करता है तू... कुछ शरम है, घर-परिवार कैसे चल रहा?'

'साहब लोग से बढ़िया चल रहा...'

वह हँसा, 'मैं मनाने भी तो आ गया.. चल माफी माँगता हूँ... अपना कौन राज-पाट है, जिसके लिए तू रूठ रही.. लड़ने दे उन लोगों को... कल से पैसा सीधे तेरे हाथों मे...।' उसने उसे बाँहों में समेट लिया।



## डाक वितरण पर निबंध

★ जवाहर चौधरी



### जन्म

11 फरवरी, 1952, इन्दौर - म.प्र.

### शिक्षा

एम.ए., पी-एच.डी., (समाजशास्त्र)

### सृजन

प्रायः सभी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लेख व रचनाओं का सतत् प्रकाशन, रेडियो-दूरदर्शन पर पाठ।

### पुस्तकें

दो उपन्यास, दो कहानी संग्रह, ग्यारह व्यंग्य संग्रह, एक लघुकथा संग्रह, एक नाटक।

### प्रमुख पुरस्कार एवं सम्मान

म.प्र. साहित्य परिषद् का 'शरद जोशी पुरस्कार', माणिक वर्मा व्यंग्य सम्मान 'गोपाल प्रसाद व्यास व्यंग्यश्री सम्मान' सहित अन्य सम्मान

### संपर्क

विष्णुपुरम कॉलोनी, न्यू कचहरी रोड, सरायमीरा, कन्नौज, उ.प्र. - 209727  
मो. - 9839611435

# जो

डाक विभाग में हो, और साहब भी हो, तो डाक-साहब ही हुआ। वो डाक-साब हैं। आज उनके दर्शन की मंशा से भरा मेरा यह पाँचवा प्रयास है। पहले चार बार वे खुद बता चुके हैं कि वे यहाँ नहीं हैं, दौरे पर गए हुए हैं। उनका तजुर्बा शायद यह है कि दो या अधिक से अधिक तीन प्रयासों के बाद दर्शन का इच्छुक दूर से ही हाथ जोड़कर तृप्त हो लेता है। आज उन्होंने अपने अस्तित्व को दफ्तर की कुर्सी पर स्वीकार लिया तो हम धन्य हुए। जो कि होना ही चाहिए, फर्ज है हमारा। सरकारी आदमी अपनी कुर्सी पर होशोहवास में मिल जाए तो आम आदमी का धन्य हो पड़ना तो बनता है। फिर वे कृपापूर्वक स्वीकार भी रहे हैं कि वे ही 'साहब' हैं।

“कहिए ?” वे सीधे मतलब पर आए, यानी मतलब का कुछ।

“जी, हमारे मोहल्ले में डाक वितरण नहीं हो रहा है।” मैंने समस्या रख उनकी उम्मीद के दूध में नींबू निचोड़ा।

“मोहल्ले में !!! आप मोहल्ले के क्या हैं ?” पहली बूँद में ही वे फटने लगे।

“घर है मेरा। ... मैं मोहल्ले का निवासी हूँ।”

“निवासी तो आप देश के भी हैं तो क्या .... !!”

“मेरी डाक नहीं आ रही है तो क्या मैं शिकायत भी ना करूँ !?”

“अपनी करो ना। मैंने कब मना किया है! मोहल्ला क्यों घुसेड़ लिया बीच में ?”

“ठीक है, .... साहब मेरी डाक नहीं आ रही है पिछले तीन माह से।”

“तो ?” उन्होंने ऐसे घूरा मानो मैं कम्युनिस्टों का सिखाया-पढ़ाया नजर आ रहा हूँ।

“मुझे मेरी डाक मिलनी चाहिए, इसमें 'तो' का क्या मतलब ?”

“अगर लोग आपको चिट्ठियाँ नहीं लिखेंगे तो इसमें डाक विभाग क्या कर सकता है ?”

“चिट्ठियाँ तो लिखते हैं मुझे।”

“आज के जमाने में कोई क्यों लिखेगा आपको चिट्ठियाँ !! आप खुद कितनी चिट्ठियाँ लिखते हैं हर महीने ?”

“लिखता हूँ, ... जितनी जरूरत होती है, उतनी लिखता हूँ।”

“क्यों लिखते हो ... आजकल तो वाट्सएप, एसएमएस और ई-मेल का जमाना है !”

“वो भी करता हूँ... मैं आपकी बात समझ गया... देखिए मेरी डाक में पत्र-पत्रिकाएँ होती हैं, जो हर माह अनिवार्य रूप से आती हैं।” उनकी साहबी रोकते हुए मैंने कहा।

“अच्छा प्री आती हैं ... काम्प्लीमेंट्री ?”

“प्री क्यों आएंगी !! दस- बारह पत्रिकाओं का सदस्य हूँ मैं। बाकायदा सालाना चंदा देता हूँ।”

“दस-बारह पत्रिकाओं का ?”

“हाँ, वो तो आती ही है ना नियमित। बिना नागा। उसका वितरण तो होना चाहिए।”

“रसीदें तो होंगी चंदे की ? ले के आना फिर देखते हैं।”

“ये तो हद है !! रसीदों से आपको क्या!?”

“आप कह रहे हो कि दस-बारह पत्रिकाएँ आती हैं तो मैं कैसे मान लूँ?”

“लेकिन बात तो डाक वितरण की है ...”

“करते क्या हो इतनी पत्रिकाओं का आप ?”

“पढ़ता हूँ ...और क्या !”

“और क्या आता है डाक से ?”

“कुछ किताबें भी आती हैं, समझिये तीन-चार हर माह।”

“इतना पढ़ लेते हो आप?”

“हाँ...पढ़ता हूँ।”

“मुझे तो नहीं लगता।”

“आप तो ये देखिए कि मेरी डाक क्यों नहीं मिल रही है? मुझे लगता है

कि नया डाकिया ठीक से डाक बाँटता नहीं है। हाल ही में बड़े तालाब के पास सैकड़ों आधार कार्ड पड़े मिले थे, जिन्हें बाँटा जाना था, लेकिन वहाँ फेंक दिए गए थे। वो डाकिया भी सस्पेंड हुआ था। ... हुआ था या नहीं ?” इस बार मैंने अपनी पूरी बात कह दी शायद।

“इतना तो आपको समझना ही होगा कि पत्र-पत्रिकाओं और आधार कार्ड में बड़ा अंतर होता है।”

“ठीक है, सस्पेंड मत कीजिए। लेकिन डाक बराबर बँटे, ये देखना आपकी जिम्मेदारी है।”

“जिम्मेदारी! हमारी काहे की जिम्मेदारी ? ऐं?... जिम्मेदारी के साथ डाक लेना हो तो कोरियर से मँगवाया करो।”

“ये क्या बात हुई ? अगर सब लोग कोरियर से मँगवाने लगेंगे तो एक दिन सरकार डाक विभाग को बंद कर देगी।”

“ऐसे कैसे बंद कर देगी सरकार? यूनियन है हमारी, मानवाधिकार है, कोर्ट है, वकील हैं, विपक्षी दल हैं। लोकतंत्र है, कोई मजाक है? सरकार अपनी मर्जी चला लेगी !”

“नहीं, मर्जी तो आपकी चलेगी। ...देखिए ... मेरा कहना सिर्फ यह है कि मेरी डाक मिलनी चाहिए, जो कि नहीं मिल रही है।”

“ओके, आप लिखित में शिकायत कीजिए।”

“दो बार कर चुका हूँ। ये देखिए शिकायत की प्रान्ति-कापी।”

“बस... एक कागज ?”

“शिकायत है, और क्या ?”

“आपके पास पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं, किताबें वगैरह ?”

“हाँ, अभी बताया तो।”

“उनकी रसीदें भी लगाओ, फोटोकापी अटेस्ट करवा के।”

“अटेस्ट कापी !! वो क्यों?”

“सरकारी विभाग के कायदे कानून होते हैं। कोई भी ऐरा-गैरा मुँह उठा कर कह दे कि किताबें आती हैं, पत्रिकाएँ आती हैं तो हम मान लेंगे क्या ?”

“आप पिछले डाकिए से पूछ लो। वो तो देता रहा है बरसों से।”

“वो रिटायर हो गया है। विभाग अब उससे पिछला कुछ भी नहीं पूछ सकता है।”

“देखिए सर, अनेक संस्थाएँ हैं देश भर में अपना करोबार करती हैं। सरकार भी अपनी चिट्ठियाँ लोगों तक डाक से ही पहुँचाती है। अगर ठीक समय पर आपके डाकिया जी चिट्ठियाँ वितरित नहीं करेंगे लोगों का ही नहीं संस्थाओं का भी नुकसान होगा।”

“तीन महीने तुम्हें पत्रिकाएँ नहीं मिलीं तो तुम्हें क्या नुकसान हुआ ?”

“हुआ क्यों नहीं, बहुत हुआ। देखिए मैं बताता हूँ ...”

“अभी नहीं ... एक निबंध लिख लाओ कल। विषय रखो - डाक का महत्त्व। कल नहीं तो परसों, चार दिन बाद, या महीने भर बाद, कभी भी आ जाना।” कह कर बिना पलटे वे तुरंत निकल लिए, शायद दौरे पर।



## संबंधों का समाजशास्त्र



★ सेवाराम त्रिपाठी

**जो** बहुत दूर संभव है/पहुँचकर संभव होगा/जाते-जाते छूटता रहेगा पीछे/जाते-जाते बचा रहेगा पीछे/जाते-जाते कुछ भी नहीं बचेगा जब/तब सब कुछ पीछे बचा रहेगा/और कुछ भी नहीं में/सब कुछ होना बचा रहेगा।' (विनोद कुमार शुक्ल)

सौभाग्य से हम एक बहुत बड़े परिवार से हैं। जिसे हमारे पुरखों ने वसुधैव कुटुंबकम् कहा है। हम एक सामाजिक-सांस्कृतिक आदमी भी हैं। परिवार के समुद्र में एक एक बूँद के प्यासे हैं हम और उसी की एक बूँद पाना चाहते हैं। बूँद-बूँद से सागर भरता है। अंध धार्मिकता से अच्छे हैं वे लोग, जो जरा कम धार्मिक हैं या नास्तिक हैं और जो किसी तरह का ढोंग-धतूरा तो नहीं करते। इस जमाने में आदमी बने रहना सबसे कठिन काम है। दुनिया में अमीर भी हैं और गरीब भी, पढ़े-लिखे और परम विद्वान भी और अपढ़ भी। कुछ तो ऐसे भी हैं, जो दोनों समय की रोटी बड़ी मुश्किल से जुटा पाते हैं। हम सभी का आदमी में, आदमी की अकूत ताकत में भरा-पूरा विश्वास होना चाहिए। दुनिया हमारा बहुत बड़ा परिवार है। उससे छोटा परिवार भारत है और उसके बाद एक छोटा-सा परिवार हमारे गाँव, कस्बे, शहर और बड़े नगर भी हैं।

सोचता हूँ कि हम परिवारों को रक्त संबंधों भर में न देखें। जिंदगी के व्यवहार शास्त्र में समझे तो परिवार के नए संबंध स्थापित करने में सुविधा होगी। अनुभव हमें बहुत कुछ सिखाते हैं। कभी-कभी खून के रिश्तों से गैर खून के रिश्ते, मनुष्यता के रिश्ते ज्यादा ठोस, प्रभावी और ताकतवर होते हैं। इनका आकलन नेह और नातों के पारिभाषित रूपों से अलग जाकर भी ढूँढ़ना चाहिए। इनको हमें अनुभवों के विराट संसार में करीने से खोजना चाहिए। हमारे जीने का भी एक अभूतपूर्व फलसफा है। जिसे हम जिंदगी के भोगे हुए दर्पण में भी देख और अनुभव कर सकते हैं। परिवार वही नहीं है, जो सामाजिक अधिनियमों में बाँधकर जिए जा सकते। उससे बाहर भी है। इनकी एक खुली दुनिया है। इसके यथार्थ को विस्तार से ही समझा जा सकता है। कुछ फिल्में मेरे जेहन में दस्तक दे रही हैं। अवतार, बागवान। कुछ ख्यातनामों का उल्लेख करना चाहता हूँ। प्रो. कमला प्रसाद मेरे गुरु

जन्म :

22 जुलाई 1951, सतना (म.प्र.)

सृजन :

अंधेरे के खिलाफ, खुशबू बाँटती हवा (कविता संग्रह), मुक्तिबोध: सर्जक और विचारक (आलोचना), हाँ हम राजनीति नहीं कर रहे (व्यंग्य संग्रह) तथा अन्य पुस्तकें, प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

सम्मान :

मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी पुरस्कार

सम्पर्क :

रजनीगंधा - 06, शिल्पी उपवन, अनंतपुर, रीवा (म.प्र.) - 486002  
मो. 7987921206

रहे हैं। मुझे एम. ए. में दो साल सतना कॉलेज में पढ़ाया है। बाद में मेरे बेटे को भी पढ़ाया और पी-एच. डी. कराई। रिश्ते क्या होते हैं, इसे किताबों भर से नहीं जाना जा सकता। इसे जिंदगी के महासंग्राम से पहचानना पड़ेगा। बाद में उनके और मेरे बीच रिश्तों में सघनता और आई। वे मेरे अग्रज, शुभचिंतक और अगुआ रहे जीवन भर। अब वे नहीं हैं इस दुनिया में। लेकिन रिश्ते जुड़े हुए हैं। उनकी पत्नी मेरी आदरणीय भाभी रही हैं। सगे भाई-भाभी से ज्यादा प्रगाढ़ रिश्ते हैं। आशीष की शादी हुई तो तमाम असुविधाओं के बाद मेरे घर में पंद्रह दिनों तक साथ रहीं। उनके तीन बेटे हैं। बहुएँ हैं। दो बेटियाँ हैं। उनका परिवार है। मेरे बच्चे और परिवारी उसी तरह जुड़े हैं। रहना न रहना, अरसे से न मिलने की कोई गठान नहीं है। वे मेरे बेटों के ताऊ जी थे-रक्त संबंधों से ज्यादा प्रभावी। दूसरा उदाहरण है-प्रो. राममूर्ति त्रिपाठी जी का-संस्कृत, हिंदी के उद्भट विद्वान। वे उज्जैन विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर और अध्यक्ष रहे। वे प्रो. कमला प्रसाद जी के अध्यापक गुरु थे-मेरे घर उसी तरह सम्मानित और मैं उनके घर में। उनके बहू-बेटे इसी डोर में पिरोये। तीसरा उदाहरण है-श्री देवीशरण ग्रामीण जी का-मेरे निकट के घर परिवारी।

यूँ तो बहुत से उदाहरण हैं। कुछ एकदम अज्ञात लोगों के दे रहा हूँ। एक लंबा अंतराल रहा है, लेकिन लगता है एकदम ताजे हैं। उनके लिए समय

कोई मायने नहीं रखता। एक थे श्री सूरज प्रसाद निगम, जो मात्र एक सुपर वाइजर रहे हैं। अमरपाटन में मेरे पड़ोस में रहते थे। रिश्ते बने तो मेरे एकदम करीबी से बढ़कर। तीन बच्चे थे। मनोज (बबलू) डब्लू, भइया यानी अंजनी। एक बेटा भी थी कन्नू। दो बच्चे भाभी के सामने चल बसे-डब्लू और कन्नू। निगम जी पूर्व में ही बीमारी से चले गए। वे एकदम घरेलू थे। अभी पिछले 29 सितंबर, बाईस को भाभी उमा देवी भी हमें छोड़ गई। अब मैं उनके बच्चों को कैसे ढाढ़स बँधाऊँ? रिश्ते हैं तो हैं, मेरे जीते जी वे रहेंगे। कोई उन्हें छेक नहीं सकता। दूसरा उदाहरण अमरपाटन में पदस्थ ग्राम सेविका बहन जी का है। वे मेरे एकदम बगल में रहती थीं। मैं अकेले रहता था। घर के ताले की एक चाबी हमेशा उनके पास होती थी। आने में जब भी देर हुई। मेरा खाना मेज या चौकी पर रखा मिलता। मेरी शिकायत का कोई असर नहीं। यह रिश्ता भाभी के रूप में जीवन-संवेदना से जुड़ा रहा। उनके पति को हम सभी बाबू के रूप में मानते थे। वे सेना में थे। तीन-चार वर्ष की सेवा के बाद नौकरी छोड़कर बच्चों के साथ रहने लगे। ये रिश्ते सहज थे। जहाँ कॉलेज के प्राध्यापक का महत्त्व नहीं होता था, पैर छूता तो संकोच में पड़ जाते। उनकी दो बड़ी-बड़ी बेटियाँ हैं। बड़ी मुझसे तीन साल उम्र में छोटी। वह मुझे चाचा बोलती, दूसरी शशि। जब पाँव छूता तो बेहद संकोच करतीं। एक बेटा है-महेन्द्र। जो अब इंदौर में शिफ्ट

हो गया। शासकीय महाविद्यालय में क्रीड़ा अधिकारी है। उसकी पत्नी कल्पना शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में गृहविज्ञान की व्याख्याता हैं। उनका पूरा परिवार मेरे अपने परिवार की तरह है और उसी तरह की ऊष्मा है।

तीसरे थे श्री अशोक कुमार द्विवेदी। वे अमरपाटन में पदस्थ थे जलकल विभाग में-मेरे पड़ोसी। रिश्ते विकसित हुए तो जीवन पर्यंत रहेंगे। कुछ समय पूर्व यानी इसी पाँच सितंबर, दो हजार बाइस को वे दुनिया को अलविदा कह गए। उनकी पत्नी विमला को कॉलेज में नहीं पढ़ाया। पढ़ाया है तो घर में। वे मेरी पत्नी शांती को दीदी कहती हैं और मुझे कभी सर और कभी जीजा जी। तीन बेटियाँ हैं-सोनू, रेनू और इति। ये घर के नाम हैं। स्कूल कॉलेज के नाम अभी तक नहीं जानता। उनके भी बड़े-बड़े बच्चे हैं, लेकिन घरेलू नाम से पुकारता हूँ। मेरा पूरा परिवार रिश्तों की जमीन से जुड़ा है। यह तो छोटी-सी कहानी है। कभी विस्तार से इसे और खोजूँगा। उन्हें जानना इतना सामान्य था भी नहीं।

रीवा शहर में एक शिल्पी उपवन कॉलोनी है अनंतपुर में-पेड़ों और घनी झाड़ियों से आच्छादित, जहाँ कॉलोनी विकसित हुई है। यहाँ के लोगों का भी एक भला-सा, बहुत प्यारा-सा परिवार है। हर वर्ष यहाँ कुछ कार्यक्रम पूर्व में भी होते रहे हैं। इस वर्ष भी हुए। नौ-दस दिन तक पता ही नहीं चला कि हम अलग-अलग हैं। मिलना-जुलना तो

कभी-कभार होता ही रहता है। इस दौर में एक सहचरत्व भी विकसित हुआ। ऐसा अनुभव हुआ कि हम सभी लोग एक परिवार की तरह हैं। संयुक्त परिवारों की विदाई के बाद, संबंधों की भयावह टूट-फूट के बावजूद कुछ ऐसा है, जो हमें लगातार जोड़े हुए है। रिश्तों के विस्तार में या घनत्व में हम गोता लगाते रहे, हँसते-मुस्कराते हुए कुटुंब की तरह एक अपनत्व सजाते-सँवारते रहे। सचमुच यह बहुत बड़ी बात है। यह हमारे जीवन के अनुभव का बहुत बड़ा प्रक्षेत्र और व्यापकता है और अमूल्य खजाना भी है। इस बड़े परिवार में कुछ बड़े भाई, भाभियाँ, छोटे भाई, अनुज बधुएँ, बेटे-बहूओं, नाती-नातिन, पोते-पोतियाँ, भतीजे-भतीजियाँ और अन्य लोग शामिल रहे। आदर-सम्मान और इज्जत, प्यार-दुलार सब कुछ मिला। कहते हैं- बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख। मैं समाजशास्त्र का विद्यार्थी कभी नहीं रहा, लेकिन समाज की ताकत को निकट से जानता-पहचानता रहा हूँ और इसी समाज में पला-बढ़ा हूँ। गाँव-घरों के रिश्तों के एहसास दिल में बेहद निकट बसते हैं। हम जिंदगी भर इन्हें अनुभव करते हैं और लगातार जीते हैं। आदमी ज्यादा दिन तक नफरत में जी ही नहीं सकता। मैं मानता हूँ कि प्यार-दुलार से बड़ी कोई दुनिया नहीं हो सकती।

हमारे घर-परिवार और गाँव-समाज ने हमें बड़ी सीख दी है। रिश्तों के सीमेंट को जानता हूँ और उसके जुड़ाव

को भी। परिवार नहीं होते तो शायद हम भी नहीं होते। छोटे-छोटे गाँवों-कस्बों से आकर हम यहाँ बसे हैं। किसी आकाश मंडल से टूटकर किसी नक्षत्र की तरह नहीं आए। न जाने किस चमत्कार से या परिधि से हम सभी यहाँ इकट्ठा हुए हैं। इकट्ठा हुए तो भाईचारा बढ़ा। हम छोटे-बड़ों के सुख-दुःख में, उत्सवों में, खान-पान में शामिल होते हैं। सुख में सुखी और दुःख में दुःखी

कबीर ने कहा था- “हे साधो, यह तन ठाठ तमूरे का/पाँच तत्त्व का बना है तमूरा, तार लगा नौ तूरे का/-टूटा तार बिस्वर गई खूँटी/हो गया धूरम धूरे का/ या देही का गर्व न कीजे, उड़ गया हंस तमूरे का।” परिवार यूँ तो दुनिया के बहुत बड़े परिवार की एक सबसे छोटी-सी इकाई है, लेकिन उसका घनत्व और जीवन मूल्यों की औकात बहुत बड़ी है, जिसे जल्दी नापा

मुझे इस तरह के कोई विद्यालय और विश्वविद्यालय कभी नहीं दिखे, जहाँ रिश्तों के विस्तार को, एहसास को और अपनत्व को पढ़ाया जाता हो। नैतिकता की पढ़ाई पाठशालाओं से नहीं आवंटित की जा सकती। इनके उत्तम विश्वविद्यालय हमारे घर-परिवार और सामाजिक रिश्तों में ही निहित हैं, जहाँ जीवन की वास्तविकता और ऊष्मा है। ये रिश्ते विनम्रता में और छल-कपट विहीन जीवन में ही सुरक्षित और संरक्षित होते हैं। आरोपित मनोविज्ञान की दुनिया में ये किसी प्रकार संभव नहीं हो सकते। परिवार से बड़ा कोई धन हमारे जीवन में हो ही नहीं सकता। मुट्ठी बाँधे हुए आए थे और हाथ पसारते हुए चले जाना है।

होते हैं। बच्चों के जन्मदिन में संभव हुआ तो मिलते हैं। बड़ों के जन्मदिन पर बधाई देते हैं। अन्यथा सुख-सौहार्द बनाए रखने की कामना करते हैं। छोटे-बड़ों और रिश्तों का जितना बड़ा नेटवर्क, योगदान और लिहाज हमारे जीवन में है, वह अद्भुत और अद्वितीय भर नहीं है, वह एक तरह से चमत्कारिक और जादू-सा लगता है। यहाँ से अंतिम यात्रा में जाएँगे तो लोग हमारी अच्छाई ही तो याद करेंगे।

ही नहीं जा सकता। इस लिहाज से परिवार इस दुनिया की सबसे बड़ी नेमत है। जीवन बहुत आसान चीज नहीं है। इसके लिए हमें रोज-रोज संघर्ष करना पड़ता है। रोज-रोज लड़ना और जूझना भी पड़ता है। यही अर्ज है कि जितने दिन जीना है, प्रेम से रहना है। परिवार अच्छे संस्कारों के खुले दर्पण हैं। अच्छे संस्कारों के प्रदेता परिवार और रिश्ते ही होते हैं। प्रेमचंद की कहानी ‘विस्मृति’ की याद हो आई-‘प्रकाश

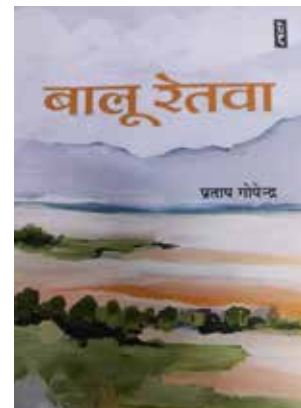
की धुंधली-सी झलक में कितनी आशा, कितना बल, कितना आश्वासन है, यह उस मनुष्य से पूछो, जिसे अँधेरे ने एक घने वन में घेर लिया है। प्रकाश की वह प्रभा उसके लड़खड़ाते हुए पैरों को शीघ्रगामी बना देती है। उसके शिथिल शरीर में जान डाल देती है। जहाँ एक-एक पग रखना दुष्कर था, वहाँ इस जीवन-प्रकाश को देखते हुए मीलों और कोसों तक प्रेम की उमंगों से उछलता हुआ चला जाता है।' कितना बड़ा है जीवन के लिए यह अंदरूनी आश्वासन। कितना बड़ा बल है यह, इस भयानक अँधेरे दौर में। वह कौन है, जो इससे अनछुआ रह सकता है। हमें बहुत जरूरत है इस ताकत की, इस रचनात्मक जज्बे की, संबंधों के विस्तार की।

मुझे इस तरह के कोई विद्यालय और विश्वविद्यालय कभी नहीं दिखे, जहाँ रिश्तों के विस्तार को, एहसास को और अपनत्व को पढ़ाया जाता हो। नैतिकता की पढ़ाई पाठशालाओं से नहीं आवंटित की जा सकती। इनके उत्तम विश्वविद्यालय हमारे घर-परिवार और सामाजिक रिश्तों में ही निहित हैं, जहाँ जीवन की वास्तविकता और ऊष्मा है। ये रिश्ते विनम्रता में और छल-कपट विहीन जीवन में ही सुरक्षित और संरक्षित होते हैं। आरोपित मनोविज्ञान की दुनिया में ये किसी प्रकार संभव नहीं हो सकते। परिवार से बड़ा कोई धन हमारे जीवन में हो ही नहीं सकता। मुट्ठी बाँधे हुए आए थे और हाथ पसारे हुए चले जाना है। क्या कुछ जाएगा हमारे साथ, फिर काहे

का गुमान। पैसा-रुपया, पद-प्रतिष्ठा सब यहीं छोड़कर इस चमचमाती रंगीनियों से विदा हो जाएँगे। हमारे साथ न धर्म जाएगा और न हमारा गर्व, न ढोंग न किसी किस्म का कठघरा। सब यहीं धरा-का-धरा रह जाएगा। हमारे साथ यदि कोई चीज ठिकाने को पहचानी जाएगी तो यही रिश्तों के कमाल और यही पारिवारिकता। इसलिए हमें किसी भी कीमत में आदमी बने रहना है। हम परिवारी बने रहें और एक-दूसरे से जुड़े रहें। यही हमारे जीवन की वास्तविकता और राहें यानी रास्ता है। यही हमारा यथार्थ भी है। रहीम का एक दोहा स्मरण में आ रहा है- 'टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार/रहिमन फिर-फिर पोहिए, टूटे मुक्ताहार।' उसी टूटते हुए धागों को नए सिरे से जीवन में मोती की तरह गूँथने की ख्वाहिश रखते हैं हम। कह नहीं सकता, कितना कुछ हो पाएगा। लेकिन जितना होगा वह भी किसी तरह कम नहीं होगा। नफरत, क्रूरता और अमानवीयता के इस दौर में जिगर मुरादाबादी ने सच ही कहा है- 'उनका जो काम है अहले सियासत जाने/मेरा पैगाम मोहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे।'

इन दिनों हमने जो-जो कमाल देखे, वे किसी आश्चर्य से कम नहीं थे- बच्चों के कार्यक्रम, स्त्रियों के करतब और उनकी बढ़चढ़ कर भागीदारी, लोगों का उत्साह-उमंग, उल्लास और जोश। यह रिश्तों की जमीन और उनकी ऊष्मा के बिना किसी भी सूरत में संभव नहीं हो सकता था। जो कुछ हुआ, उसे सहेजने की बेहद जरूरत और आगे के

लिए भी ऐसी तड़प बनी रहे। कहते हैं कि हमारे जीवन में बड़ों-छोटों का स्नेह और रिश्तों की दुआ और दवा हो तो क्या कहना? हम दुनिया से कुछ भी पा सकते हैं और जमाने से दो-दो हाथ कर सकते हैं। किसी फिल्म का यह गीत यादों में घुमड़ रहा है। 'इक दिन बिक जाएगा, माटी के मोल/जग में रह जायेंगे, प्यारे तेरे बोल/दूजे के होंठों को देकर अपने गीत/कोई निशानी छोड़, फिर दुनिया से डोल।' (मजरूह सुल्तानपुरी) हम परिवार और रिश्तों के लिए केवल दुआ ही कर सकते हैं। दिली ख्वाहिश है कि इन्हें किसी की नजर न लगे। यह जिंदगी हकीकत भी है और दर्शन भी। एक फिल्म आई थी- मेरा नाम जोकर। वह हँसने की फिल्म नहीं थी। वह जिन्दगी की असलियत का बयान करती है। एक गीत के बोल सुनें- 'हाँ बाबू! यह सर्कस है/और सर्कस है सो भी तीन घंटे का/उसके बाद /खाली-खाली कुर्सियाँ/हैं खाली-खाली तंबू है/खाली-खाली घेरा है/बिन चिड़िया का बसेरा है/न तेरा है न मेरा है।'



## राजा भोज और कुविंद

★ हरिशंकर राठी

**ज**ब भी अपने यहाँ लोक में बौद्धिक-साहित्यिक संपन्न काल की बात की जाती है, तो राजा भोज का नाम सबसे ऊपर आता है। उनका काल जो भी रहा हो, लेकिन उस काल में कला और साहित्यप्रेम लोकजीवन में इतने विकसित हुए कि मुहावरा तक बन गया कि कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। जहाँ राजा भोज विद्वता और साहित्यप्रेम के लिए विख्यात हैं, वहीं गंगू तेली निरक्षरता के प्रतीक के रूप में। लेकिन जनश्रुतियों के अनुसार राजा भोज के राज्य में कोई गंगू तेली नहीं था। उसे तो लोक ने कालांतर में अपने बीच से उठाया होगा। राजा भोज के राज्य में कोई अनपढ़ या साहित्य निरक्षर था ही नहीं।

राजा भोज और लकड़हारे का 'राजन! यथा बाधति बाधते, तथा भारं न बाधते' वाला प्रसंग तो बहुत ही विख्यात है, किंतु इसके अतिरिक्त भी उनके राज्य में कवियों-विद्वानों की बहुत-सी चर्चाएँ चलती हैं। उन्हीं कथाओं में राजा भोज और कुविंद यानी जुलाहे का संवाद कम रोचक व आश्चर्यजनक नहीं है।

कहा जाता है कि एक बार दक्षिण के किसी राज्य से लक्ष्मीधर नामक कोई पंडित राजा भोज की सभा में उपस्थित हुए। उनके ज्ञान से राजा भोज बहुत प्रभावित हुए। जब राजा भोज को यह ज्ञात हुआ कि पंडित लक्ष्मीधर उनके राज्य में निवास करना चाहते हैं, तो उन्होंने नगर कोतवाल को बुलाया और आदेश दिया कि पूरे नगर में जो कोई भी निरक्षर हो, उसे पर्याप्त धन देकर कहीं और बसा दिया जाए और उसके घर में पंडित जी को ठहराने की व्यवस्था की जाए।

राजाज्ञा के अनुसार नगर कोतवाल पूरे नगर को छान मारा, किंतु उसे कोई अशिक्षित व्यक्ति नहीं मिला। सभी कहीं-न-कहीं से अच्छी शिक्षा प्राप्त किये हुए थे। नगर कोतवाल से यह समाचार सुनकर राजा भोज प्रसन्न भी हुए और चिंतित भी। प्रसन्न इस बात पर कि उनके राज्य में कोई अशिक्षित नहीं है और चिंतित इस बात पर कि पंडित लक्ष्मीधर के आवास की व्यवस्था कहाँ की जाए। कुछ देर सोचकर राजा भोज ने नगर कोतवाल को आदेश दिया कि पूरे नगर में ऐसे व्यक्ति की तलाश की जाए जो कविता करना न जानता हो। उसका मकान खाली कराके पंडित लक्ष्मीधर के आवास की व्यवस्था की जाए। राजा भोज को विश्वास था कि ऐसा व्यक्ति मिल ही जाएगा।

नगर कोतवाल ने फिर नगर में भाग-दौड़ की। उसे एक जुलाहा मिला, जो अपने रुई-सूत में लगा हुआ था। कोतवाल ने उससे पूछा कि क्या वह



शिक्षित है। जुलाहे ने बताया कि उसने गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण की है। कोतवाल ने फिर पूछा कि क्या उसे कविता करनी आती है? जुलाहा अपना समय खराब होता देख टालने की गरज से कहा कि वह तो दिन-रात ताने-बाने में लगा रहता है। वह कविता कैसे कर सकता है? कोतवाल खुश हुआ और बलपूर्वक जुलाहे को राजदरबार में खींच लाया।

‘महाराज, यह कुविंद कविता करना नहीं जानता। बहुत कठिनाई से इसे मैं सभा में लाया हूँ। अब आप इससे पूछ लें।’ राजा ने कुविंद से पूछा कि क्या वह सचमुच कविता करना नहीं जानता। यदि नहीं जानता तो वह राजकोष से धन लेकर अपने आवास की अन्यत्र व्यवस्था करे, क्योंकि दक्षिण से पधारे पंडित लक्ष्मीधर को उसी नगर में आवास देना है। यह सुन कुविंद ने राजा से अनुमति लेकर एक छंद सुनाया :

काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि

यत्नेन करोमि यदि चारुतरं करोमि।

भूपालमौलिमणिमंडितपादपीठं

हे साहसांक! कवयामि वयामि यामि॥

अर्थात् मैं काव्य करता हूँ, लेकिन सुंदर काव्य नहीं करता। यदि यत्नपूर्वक करूँ, तो बहुत सुंदर काव्य कर लेता हूँ। राजाओं के मस्तक की मणियों (यानी राजा भोज से युद्ध में पराजित राजाओं के मुकुट की मणियों) से सुशोभित पादपीठिका (पैर टिकाने के लिए बनी पीठिका) वाले साहसी राजा! मैं काव्य करता हूँ, कपड़े बुनता हूँ और जीवनयात्रा करता हूँ।

पूरा दरबार कुविंद के इस छंद की अंतिम दो पंक्तियों के भाव और विशेषतः कवयामि वयामि यामि जैसे पदलालित्य से चमत्कृत हो उठा। उस सामान्य से जुलाहे ने ‘भूपालमौलि...’ के सामासिक पद और ‘कवयामि...’ पद समूह में से एक-एक वर्ण कम करते हुए जो वर्ण बिखेरा, उससे राजा भोज धन्य हो उठे। उन्होंने भरी सभा में मुक्त कंठ से कुविंद की प्रशंसा करते हुए उसे स्वर्ण मुद्राओं का पुरस्कार दिया और सम्मान सहित विदा किया।



## खोज खबर

### हिंदी के सार्वभौमिकीकरण पर बल दिया जाए : संतोष चौबे

लंदन, 09 दिसंबर 2023: वातायन यूके के तत्त्वावधान में संगोष्ठी-161 के अंतर्गत रविंद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री संतोष चौबे के साहित्यिक अवदान और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में उनके योगदान पर व्यापक चर्चा हुई, वैश्विक आधार पर हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में किए गए उनके बहुमूल्य कार्यों को रेखांकित किए गए। इस साक्षात्कार में ऑक्सफर्ड बिजनेस कॉलेज के प्रबंध निदेशक और जाने-माने प्रवासी साहित्यकार डॉ. पद्मश गुप्त ने हिंदी के विस्तारीकरण के व्यापक परिप्रेक्ष्य में श्री संतोष चौबे से सुंदर और सार्थक संवाद किया। अपने सहज-स्वाभाविक प्रत्युत्तरों में श्री चौबे का बल प्रवासी साहित्य, विदेशों में हिंदीतर छात्रों के हिंदी शिक्षण तथा विदेशों में हिंदी सीखने को सुलभ बनाने के लिए प्रौद्योगिकियों के प्रचुर प्रयोग पर था। श्री संतोष चौबे ने सभी हिंदी विद्वानों, लेखकों और हिंदी प्रेमियों से आह्वान किया कि वे हिंदी के सार्वभौमिकीकरण में अपना योगदान करें तथा हिंदी को एक लोकप्रिय वैश्विक भाषा बनाने के स्वप्न को साकार करें।

वैश्विक हिंदी परिवार के संस्थापक-अध्यक्ष, प्रतिष्ठित लेखक और समीक्षक श्री अनिल शर्मा जोशी की अध्यक्षता में आयोजित इस संगोष्ठी की महत्ता इसी बात से प्रमाणित होती है कि श्री संतोष चौबे की प्रत्यक्ष निगरानी में वर्ष 2023 के दिसंबर माह के उत्तरार्ध में भोपाल में अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन होने जा रहा है तथा वातायन संगोष्ठी 161 को उक्त सम्मेलन की पूर्व-पीठिका के रूप में देखा जा रहा है। गौरतलब है कि संतोष चौबे जी द्वारा स्थापित हिंदी की प्रोत्साहक संस्था ‘विश्वरंग’ के बैनर तले ही इस अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें श्री चौबे ने उन्हीं पक्षों पर अपेक्षित जोर दिया, जिन पर सम्मेलन के अधिकतर सत्र आधारित हैं।

## स्व० सरस्वती मिश्र के निधन पर श्रद्धांजलि सभा

शताब्दी वर्ष में प्रविष्ट साहित्य मनीषी प्रो. रामदरश मिश्र की सहधर्मिणी सरस्वती मिश्र जी की आत्मा की शांति के लिए ब्रह्मा अपार्टमेंट द्वारका, नई दिल्ली में शांतिपाठ एवं श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर परिवारजनों के साथ भारी संख्या में लेखक साहित्यकार, आत्मीय एवं सगे संबंधी उपस्थित थे।

ज्ञातव्य है कि सरस्वती जी का निधन पिछले 3 दिसंबर को हो गया था। जीवन के नौ दशक अत्यंत सक्रियता एवं साहस से जीने वाली सरस्वती जी पिछले कुछ माह से आंशिक पक्षाघात से पीड़ित थीं। प्रो. रामदरश मिश्र के साहित्यिक अवदान में उनकी बड़ी भूमिका थी। साहित्यिक अभिरुचि की स्वर्गीया सरस्वती जी ने मिश्र जी के प्रसिद्ध रचना संचयन 'सरकड़े की कलम' का सम्पादन कार्य भी किया था। वे बहुत जुझारू, साहसी और स्नेहिल महिला थीं। उनका स्वर्गवास उनके आत्मीयों ही नहीं, साहित्य के लिए भी क्षति है।

दिनांक 14 दिसंबर को परिजनों द्वारा आयोजित शांतिपाठ में लोग बड़ी संख्या में नम आँखों से उपस्थित थे। शांतिपाठ के बाद उपस्थित अनेक साहित्यकारों ने दिवंगता का पुण्य स्मरण करते हुए उनके जीवन और कर्म पर अपनी भावनाएँ व्यक्त कीं। प्रो अशोक चक्रधर, डॉ. प्रेम जनमेजय, डा जसवीर त्यागी, राधेश्याम तिवारी,

केशव मोहन पांडेय, अलका सिन्हा और हरिशंकर राढ़ी ने शोक संवेदना अर्पित करते हुए उनको एक परंपरा की संज्ञा दी और उनकी जीवंतता की प्रशंसा की और भावभीने मन से याद किया।

## ताराचंद 'नादान' के गजल संग्रह 'हो न हो' का भव्य लोकार्पण

रविवार, दिनांक 24 दिसम्बर, 2023 को दिल्ली विश्वविद्यालय के गौरवशाली शिक्षण संस्थान हंसराज कॉलेज में साहित्यिक संस्था 'वयम्' के बैनर तले दिल्ली के सुपरिचित गजलकार ताराचन्द 'नादान' के पहले गजल-संग्रह 'हो न हो' का भव्य और गरिमापूर्ण लोकार्पण सम्पन्न हुआ। इस गजल-संग्रह का लोकार्पण भारतीय साहित्य जगत की जानी-मानी वरिष्ठ काव्य विभूति बालस्वरूप 'राही' की अध्यक्षता में उन्हीं के करकमलों से हुआ। हंसराज कॉलेज की प्राचार्या परम विदुषी प्रो. (डॉ.) रमा के सान्निध्य में इस उत्सव के मुख्य अतिथि रहे चंपारण, बिहार से पधारे उर्दू अदब के मोतबर शायर डॉ. शकील अहमद मोईन। प्रख्यात दोहाकार-गजलकार और वयम् के अध्यक्ष नरेश शांडिल्य कार्यक्रम में मुख्य वक्ता के तौर पर उपस्थित रहे। अन्य वक्तागणों में गजल विधा के मर्मज्ञ शशिकांत, विजय स्वर्णकार और प्रमोद शर्मा 'असर' ने गजल-संग्रह पर अपने सारगर्भित विचार रखे।

पुस्तक के लेखक गजलकार

ताराचन्द 'नादान' ने अपने वक्तव्य के साथ अपनी चंद रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं।

इस कार्यक्रम का संचालन प्रसिद्ध गजलकार और 'वयम्' के महासचिव अनिल वर्मा 'मीत' ने किया। संयोजन में विशेष सहयोगी रहे हंसराज कॉलेज के डॉ. विजय कुमार मिश्र एवं पत्रकारिता की छात्र शाईस्ता शकील हैदर।

दर्शक दीर्घा में 70 से अधिक साहित्यकारों एवं साहित्य प्रेमियों की उपस्थिति रही, जिनमें ताराचन्द 'नादान' के परिवार-सदस्य, रिश्तेदार तथा दिल्ली एवं एनसीआर से आए कविगण और कविता प्रेमी भी शामिल थे।

कार्यक्रम का प्रारंभ सरस्वती वन्दना से हुआ जिसे गजलकार डॉ. रमन शर्मा ने प्रस्तुत किया। यह पुस्तक सर्वभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है।

## स्वाधीनता संग्राम में संगीतकारों का योगदान विषय पर राष्ट्रीय परिसंवाद

'संगीतकार जमीन, समय और समाज से अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं। उन्होंने समय-समय पर अपनी सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय भूमिकाओं का भी सफल निर्वहन किया है। स्वाधीनता संग्राम में भी पूरे देश के संगीतकारों ने योगदान दिया था, लेकिन यह अत्यंत दुख का विषय है

कि उनके योगदानों की कभी-कहीं कोई चर्चा नहीं हुई। इस दिशा में यह पहला विनम्र प्रयास है।' पंडित विजय शंकर मिश्र ने इन शब्दों के साथ स्वाधीनता संग्राम में संगीतज्ञों की भूमिका की चर्चा शुरू की। 'सम-सोसाइटी फॉर एक्शन थ्रू म्यूजिक' एवं संगीत नायक पंडित दरगाही मिश्र संगीत अकादमी द्वारा दिल्ली के इंडिया हैबिटेट सेंटर में आयोजित परिसंवाद - - 'स्वाधीनता संग्राम में संगीतज्ञों की भूमिका' की अध्यक्षता कर रहे संगीत नाटक अकादमी के सहायक निदेशक और उसकी पत्रिकाओं के प्रधान संपादक श्री तेज स्वरूप त्रिवेदी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कई संगीतकारों के योगदानों की चर्चा करते हुए इस बात पर दुख व्यक्त किया कि स्वाधीनता के 76 वर्षों बाद भी इस विषय पर कभी, कहीं कोई गंभीर चर्चा नहीं हुई। इस विषय पर कोई आलेख या कोई पुस्तक भी उपलब्ध नहीं है। पंजाब से आए डॉ. गवीश ने स्वाधीनता संग्राम में पंजाब के कलाकारों की चर्चा करते हुए 'जुगनी' नामक गीत भी सुनाया जिसके माध्यम से अंगरेजों के समय में स्वाधीनता का संदेश लोगों तक पहुंचाया जाता था। उन्होंने यह भी बताया कि किस तरह से अंगरेजों की बात ना मानने पर इसके नायक की हत्या अंगरेजों ने करवा दी थी। लखनऊ से पधारे वरिष्ठ पत्रकार श्री आलोक पराड़कर ने 'बदनाम गलियों की वीरांगनाएँ' विषय पर बोलते हुए उन तवायफों का जिक्र किया, जिन्होंने आजादी की लड़ाई में न केवल सक्रिय

योगदान दिया था बल्कि लड़ाइयाँ भी लड़ी थीं। उन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली भी जलाई थी और स्वाधीनता के गीतों का घूम-घूम कर गान भी किया था। इसके लिए उन्हें अंगरेजी की प्रताड़नाएँ भी झेलनी पड़ी थी। प्रयागराज से आई संगीत विदुषी डॉ. मधु रानी शुक्ला ने अपने व्याख्यान के लिए लोक संगीतकारों की भूमिका को चुना। उन्होंने विभिन्न लोकगीतों का संक्षिप्त गायन भी किया। उनका वह गीत काफी पसंद किया गया जिसमें गांधी जी को दूल्हा बताते हुए दहेज में स्वराज की माँग की गई थी। मधु रानी शुक्ला ने इस बात को रेखांकित किया कि लोक कलाकारों ने अपने लोक गायन के द्वारा आजादी का संदेश जन-जन तक पहुंचाया था। मुंबई से आई विदुषी माधवी नानल और डॉ. विद्या ओक ने महाराष्ट्र के संगीतकारों के योगदानों की चर्चा करते हुए हिंदी और मराठी के कई गीतों का भी सुमधुर गायन किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार नारायण मोरेस्वर खरे ने गांधी जी के आश्रम में जाकर उनके भजनों का संगीत तैयार करके लोगों को सिखाया। किस तरह से पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर, पं. विनायक राव पटवर्धन और पं. ओंकार नाथ ठाकुर कांग्रेस के अधिवेशनों में जाकर वंदे मातरम का गायन करते थे। माधवी जी और विद्या जी के सुरीले गायन ने कार्यक्रम में एक अलग तरह की रंजकता का समावेश कर दिया। इस अवसर पर पं. दामोदर लाल घोष और संगीत गुरुकुल तथा संगीत नायक

पंडित दरगाही मिश्र संगीत अकादमी के बाल और युवा कलाकार देशभक्ति के विभिन्न गीतों का सुरीला गायन करके परिसंवाद की गंभीरता को सरसता में बदलते रहे। तबले पर पंडित सुसमय मिश्रा ने बहुत अच्छी संगति की। परिसंवाद का शुभारंभ वंदे मातरम के ओजपूर्ण गायन से हुआ और समापन जन-गण-मन के गायन से। इस अवसर पर सम संस्था द्वारा सभी वक्ताओं को संगीत शब्द शिल्पी सम्मान से सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का संचालन इन दोनों संस्थाओं के संस्थापक अध्यक्ष पंडित विजय शंकर मिश्र ने किया।

### भोजपुरी को संवैधानिक मान्यता के सवाल पर 'आयाम' गोरखपुर की संगोष्ठी सम्पन्न

भोजपुरी सिर्फ बोली ही नहीं सक्षम भाषा भी है, जिसकी सांस्कृतिक जड़ें देश विदेश में फैली हुई हैं। भोजपुरी बोलने वाले करोड़ों लोगों की पुरानी माँग है कि उसके संरक्षण और विकास के लिए उसे संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाए।

भोजपुरी का खड़ी बोली हिन्दी से कोई बैर-विरोध नहीं है बल्कि सच यह है कि बोलियों के संवर्धन से हिन्दी और भी मजबूत बनेगी। हमें हिन्दी उतनी ही प्यारी है, जितनी भोजपुरी। यदि भोजपुरी अपने संरक्षण और विकास के लिए सरकार प्रदत्त सुविधाएँ और सहयोग की माँग कर

रही है तो इसमें हिन्दी के विभागाध्यक्षों और कतिपय विद्वानों को क्यों एतराज है। हम भोजपुरी भाषी लोग स्वयं हिन्दी भाषियों में शामिल हैं।

यह बातें गोरखपुर की विमर्श केन्द्रित संस्था 'आयाम' द्वारा प्रेस क्लब सभागार में आयोजित एक संगोष्ठी में दिल्ली से पधारे भोजपुरी के चिंतक आलोचक कवि डॉ. संतोष पटेल ने कहीं।

विषय प्रवर्तन करते हुए जे. पी. विश्वविद्यालय छपरा के प्रोफेसर और भोजपुरी साहित्य के गम्भीर अध्येता डॉ. पृथ्वी राज सिंह ने भाषा के रूप में भोजपुरी के महत्त्व को रेखांकित किया। भोजपुरी प्रदेश का अद्यतन नक्शा और जनगणना तथा सर्वेक्षण आंकड़ों के आधार पर उन्होंने दर्शाया कि जहाँ एक तरफ दूसरी संवैधानिक मान्यता प्राप्त भाषाओं के बोलने वालों की संख्या में गिरावट दर्ज की गयी है, वहीं हिन्दी बोलने वालों के साथ ही साथ भोजपुरी को अपनी मातृभाषा मानने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है और भोजपुरी को संवैधानिक दर्जा देने से हिन्दी की हैसियत को कोई खतरा नहीं है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे दीनदयाल उपाध्याय वि.वि. के प्रो. विमलेश कुमार मिश्र ने भोजपुरी के ऊपर मंडरा रहे खतरों की ओर इशारा किया। उन्होंने भोजपुरी भाषा में व्यक्त हो रहे समकाल और उसकी साहित्यिक स्तरीयता को प्रश्नांकित करते हुए कहा कि खड़ी बोली में जो रचनात्मक गद्य - पद्य आ रहा है, उससे भोजपुरी के

लोग स्वयं तुलना करके अपनी स्थिति का आकलन करें। हिन्दी के शब्दों को भोजपुरी में लिखने मात्र से भोजपुरी भाषा विकसित नहीं होगी।

आलोचक डॉ. अरविंद त्रिपाठी में हस्तक्षेप करते हुए कहा कि यदि भोजपुरी और अन्य बोलियों के साहित्य और उनकी शब्द सम्पदा को निकाल दिया जाए तो खड़ी बोली हिन्दी के पास बचता ही क्या है? भोजपुरी का इतिहास हजारों सालों में फैला है, जबकि हिन्दी की पैदाइश ही अभी तीन - चार सौ साल की है। भोजपुरी भाषा ही नहीं, संस्कार भी है।

बी आई टी इंजीनियरिंग कालेज में एथिक्स के प्रवक्ता डॉ. राकेश तिवारी ने चिंता व्यक्त की कि भाषा के स्तर पर नयी पीढ़ी एकदम कंगाल है। कान्वेंट स्कूलों के दबाव में हम स्वयं अपने घरों में बच्चों को भोजपुरी बोलने से मना करते हैं, जिससे उनमें भोजपुरी के प्रति कोई लगाव ही नहीं उपजता है।

बी.एच.यू. के शोधकर्ता फूल बदन कुशवाहा ने अपनी पीढ़ी एक भोजपुरी कविता के माध्यम से व्यक्त की। सेवा निवृत्त प्रधानाचार्य, भोजपुरी कवि सुभाषचंद्र यादव ने भी अपने विचार और भोजपुरी को संसदीय मान्यता दिलाने के लिए किए गए प्रयासों को सामने रखा।

संगोष्ठी का सफल संचालन साहित्य अभिरुचि के धनी, 'आयाम' के सक्रिय सदस्य एवं शिक्षक नेता अजय कुमार सिंह ने किया। इसके पूर्व 'आयाम' के संयोजक देवेन्द्र आर्य ने

अतिथियों को सम्मानित करते हुए इस संगोष्ठी के औचित्य पर प्रकाश डाला।

ज्ञातव्य है कि विमर्श केन्द्रित संस्था 'आयाम' ने इस सेमीनार के पूर्व विगत 24 सितम्बर को भाषा विमर्श के उद्देश्य से भोजपुरी बनाम हिन्दी तथ्य एवं परिणाम विषयक संगोष्ठी आयोजित की थी जिसमें डॉ. अमरनाथ (कोलकाता) और डॉ. रामचंद्र शुक्ल (लखनऊ) ने मुख्य रूप से यह स्थापना की थी कि भोजपुरी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग से देश स्तर पर हिन्दी भाषा की स्थिति कमजोर पड़ेगी और अंततः अंगरेजी भाषा को इसका लाभ मिलेगा।

सेमीनार के दौरान और उसके बाद छपी रपटों को पढ़ कर भी इस स्थापना के विरोध में बहुत मुखर सम्मतियाँ सामने आई और 'आयाम' को लगा कि अलग भाषा के रूप में भोजपुरी की संवैधानिक मान्यता के प्रश्न पर अभी और विमर्श आवश्यक है। इसी उद्देश्य से 'आयाम' ने पूर्व में सम्पन्न सेमीनार के क्रम में विमर्श की यह दूसरी कड़ी आयोजित की ताकि भोजपुरी को आठवीं अनुसूची में शामिल करने की माँग विषयक तर्क भी सामने आ सकें।

इन दोनों सेमिनारों में व्यक्त विचारों को शामिल करते हुए एक पुस्तक सम्पादन की सम्भावना पर भी अलग से चर्चा की गई।

देवेन्द्र आर्य

संयोजक 'आयाम'

मोबाइल : 7318323162

## दो मिसरों में सार्थक बात कहने का हुनर

**ग**ज़ल का आकाश अनन्त है। दो मिसरों में अपनी बात पूर्णता के साथ कहने की खूबी के कारण ग़ज़ल बहुत लोकप्रिय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। यह अरबी और फारसी के बाद हिन्दवी और उर्दू के दयारों से होती हुई हिन्दी और इतर भाषाओं में भी पहुंची। यकीनन साहित्य की कोई सीमा नहीं होती। किसी भी विधा का कोई दायरा नहीं होता। हर विधा उस मुकाम तक पहुंचती है जहाँ तक उसे समझा जाता है, सराहा जाता है और सम्मान मिलता है।

इस लिहाज से ग़ज़ल हिंदी में भी बहुत लोकप्रिय विधा के रूप

एक कहन शैली। उस कहन शैली के अनुसार ही उस भाषा में किसी भी विधा को समझा, देखा और पढ़ा जाना चाहिए।

हिंदी ग़ज़ल में कई प्रयोगधर्मी रचनाकार हुए, जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल को ग़ज़ल के पैमानों पर प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया। वरिष्ठ रचनाकार और ग़ज़ल के छादिक अनुशासन से वाबस्ता ग़ज़लकार श्री राजेन्द्र वर्मा ने ग़ज़ल को लेकर बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग

जिन्दगी।

इन दो शेरों से ही ग़ज़ल के पूरे सफर को समझा जा सकता है। एक ओर जहाँ ग़ज़लकार स्वाभाविकता की बात करता है, वहीं दूसरी ओर उस कृत्रिम रचनात्मकता की बात करता है, जहाँ मुस्कुराहट तो लंबे समय तक है मगर जान नहीं है। किसी ग़ज़ल का शेर तभी प्राणवान होता है जब वह दिलों में पहुंचे और दिल की धड़कन बन जाए।

जब कोई शेर दिल की धड़कन बन जाता है तो वह खुद भले ही खत्म हो जाए, लेकिन अपनी खुशबू कई जिस्मों में बिखेर जाता है। इसके विपरीत हरदम मुस्कुराने वाले कागज के फूल दिलों तक नहीं पहुँच पाते सिर्फ



पुस्तक - गुलमोहर (हिन्दी गज़ले)

लेखक - राजेन्द्र वर्मा

प्रकाशक - श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

पृष्ठ - 140

मूल्य - 200/-

में प्रतिष्ठित हो चुकी है। हिंदी ग़ज़ल को लेकर अक्सर कई सारी बातें कही जाती हैं। कुछ भ्रातियाँ व्याप्त हैं, जैसे कि उर्दू की बहरों और हिंदी के छंद विधान में साम्यता नहीं है। अक्सर तुलना की जाती है कि उर्दू के शब्द संयोजन से हिंदी के शब्दों को भी तोला जाता है। यह मसअला आज का नहीं है। बीते वक्त में फिराक गोरखपुरी तक कह गए हैं, 'कहाँ ये भाँग के कुल्हड़, कहाँ सहबा के पैमाने।' लेकिन इस बात से शायद ही किसी को ऐतराज हो कि हर भाषा का अपना सौंदर्य होता है। हर भाषा की अपनी खासियत होती है। हर भाषा की मिठास होती है और हर भाषा की

किए हैं। उनका सद्यः प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह 'गुलमोहर' इसकी बानगी पेश करता है। संग्रह की पहली ग़ज़ल के पहले शेर में वे कहते हैं।

अपना जीवन चार दिनों का,  
खिलते हैं मुरझाते हैं,  
वे कागज के फूलों जैसे,  
हरदम ही मुस्काते हैं।

और ग़ज़ल संग्रह की अंतिम ग़ज़ल का आखरी शेर देखिए।

जिन्दगी से ऊबकर मैं मौत के घर  
आ गया,  
क्या पता था मौत के उस पार भी है

नजर तक महदूद होते हैं। अंतिम ग़ज़ल के आखरी शेर पर भी गौर किया जाए तो वही बात फिर से सामने आती है कि खुद को खत्म कर अपनी रचना को इतना महत्वपूर्ण बनाना और मौत के बाद भी एक नई जिंदगी की उम्मीद को पाना यही किसी सफल रचनाकार का ध्येय होता है।

मैं अकेला कहाँ हौसला साथ है,  
हमसफर की तरह वह चला साथ है।  
मुझसे दुःख- दर्द छोड़े नहीं छूटता,  
युग-युगों से वो मेरे पला साथ है।

'गुलमोहर' में उनकी सवा सौ हिंदी ग़ज़लें शामिल हैं। इन ग़ज़लों में जीवन के विभिन्न रंग दिखाई पड़ते हैं।

छोटी-सी-छोटी बहर हो या बड़ी बहर, राजेंद्र जी ने ग़ज़ल के जरिए अपनी बात बख़ूबी कही है। वे वरिष्ठ ग़ज़लकार हैं। उनके कई संग्रह प्रकाशित भी हुए हैं और कई संकलनों का संपादन भी उन्होंने किया है।

इसलिए इस संकलन की ग़ज़लें हिंदी छंद और उर्दू बहर में समझ विकसित करने वालों के लिए और उन्हें समझने वालों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। मात्राओं को लेकर एवं छंद को लेकर उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण टिप्पणी भी की है। उन्होंने अपनी बात में स्वयं यह स्पष्ट किया है, 'संग्रह की कुछ ग़ज़लें नज्मनुमा लग सकती हैं, परंतु मैं इससे दोषपूर्ण नहीं मानता। बल्कि, विषयवस्तु की परिवेशगत एकरूपता के लिए सकारात्मक मानता हूँ। हिंदी ग़ज़ल की पहचान कथ्य को लेकर अधिक है, इसलिए उर्दू की तरह एक ही ग़ज़ल में कई रसों का आना भी मुझे उपयुक्त नहीं लगता। ऐसा विधान हिंदी काव्यशास्त्र की रस की परस्पर योजना के अनुकूल भी नहीं है।'

मन गाँधी-सा है तो है,  
मुश्किल जीना है तो है।

मजहब में विश्वास नहीं,  
पर अपनापा है तो है।

मेरे भीतर जिंदा है,  
स्वप्न अधूरा है तो है।

ग़ज़ल तो ग़ज़ल होती है, उसे भाषाओं के दायरे में नहीं बाँधा जा सकता। ठीक वैसे ही जैसे किसी भी विधा को किसी भाषा में नहीं बाँधा जा सकता। यह भी सुखद है कि आज

ग़ज़ल न सिर्फ़ हिंदी में बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं में भी कही जा रही है। यह ग़ज़ल की लोकप्रियता और उसकी स्वीकार्यता है। हर भाषा में जाने के बाद किसी भी विधा में कुछ परिवर्तन आना स्वाभाविक है। जिस तरह कोई विधा किसी भी भाषा को बहुत कुछ प्रदान करती है उसी तरह कोई भी भाषा किसी विधा को भी अपनी ओर से बहुत कुछ देती है। ग़ज़ल ने भी विभिन्न भाषाओं से बहुत कुछ लिया और अपने स्वरूप में परिवर्तन किया। जहाँ तक हिंदी ग़ज़लों की बात है, हिंदी ग़ज़लों में भाव प्रधानता प्रमुख होती है। भाव अभिव्यक्ति पर अधिक जोर दिया जाता है। राजेंद्र वर्मा जी की ग़ज़लों में इस बात को महसूस भी किया जा सकता है।  
मुझको तन्हा होना था,  
मेरा रिश्ता सच्चा था।

जिस पर भी विश्वास किया,  
वह उनका ही अपना था।

इन ग़ज़लों में जिंदगी का दर्द भी उभर कर आया है। कई सारी विसंगतियाँ जो हमारे जीवन में शामिल हैं, उन्हें ग़ज़लकार ने शेरों के माध्यम से व्यक्त किया है। यह हर रचनाकार का कर्तव्य भी है कि वह उन सभी परिस्थितियों से वाबस्ता होकर उसे अपनी विधा में ढालकर पेश करे, जिनसे असंख्यजन पीड़ित हैं, प्रभावित हैं। इस लिहाज से ये ग़ज़लें कई सारे विषयों को अपने आप में समेटती हैं।

युग युगांतर हम भले वंचित रहे हैं,  
पर स्वयं में पल्लवित पुष्पित रहे हैं।

परिस्थितियाँ यकीनन बहुत विपरीत हैं। कलमकार को अपनी कलम चलाने के पहले दस बार सोचना पड़ता

है। कहने के लिए उसके सामने आकाश खुला है मगर कई पिंजरे उसके ऊपर मंडरा रहे हैं। यदि रचनाकार इन सब बातों से अपने आप को अलग रखे तो उसका दायित्व पूरा नहीं होता। राजेंद्र वर्मा जी की ग़ज़लें भी अपने आप को इन परिस्थितियों से अलग नहीं रखती हैं और परिस्थितियों के साथ शामिल होकर उन बातों को मुखरता से उजागर करती हैं, जो आज का यथार्थ है।

दिन रात हो रहा है जनतंत्र का विरूपण,  
सामंतवाद सेवी हर एक संस्था है।

राजा है नग्न लेकिन कहिए उसे सुसज्जित,  
आजन्म यातना का संत्रास अन्यथा है।

धूप खिली है माफी की,  
बन आई अपराधी की।

जज साहब, देखो-समझो,  
किसने क्या मनमानी की ?

ऐसे ही कई शेर हैं जो सोचने पर विवश करते हैं और हालात की अक्कासी करते हैं। एक सफल रचनाकार वही होता है जो हालात पर नजर रखे, आम आदमी की हालत को बयान करे और हालाते-हाजरा को अपनी रचनाओं के विषय में शामिल करे। राजेंद्र वर्मा जी का यह ग़ज़ल संग्रह इस मायने में कई सारे बिंदुओं को छूता है। कई सारी आशाओं को जगाता है।

समीक्षक सम्पर्क :

आशीष दशोत्तर

12/2, कोमल नगर, बरबड़ रोड,

रतलाम - 457001

मो. 9827084966



# आदमी की नब्ज-शिक्षित नारी की कहानियाँ

श्री राम गोपाल भावुक जी के कहानी संग्रह 'आदमी की नब्ज' की अधिकांश कहानियाँ किसी-न-किसी नारी पात्र के इर्द-गिर्द ही केंद्रित हैं। कहानियों में नारी जीवन के दुख, उनकी पीड़ा, द्वंद्व संघर्ष और सफलता को बहुत सरलता और सहजता से रेखांकित किया गया है। श्री भावुक जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से यह स्पष्ट संदेश दिया है कि यदि नारी अपनी देह का या सुंदरता का विवेकपूर्ण या चतुराई से उपयोग करे तो न

साथ ज्यादातर और बलात्कार करता है, तब भी वह घर का आश्रय छोड़कर नहीं जाती और द्यूशन पढ़ाने आने वाले सुनील जाटव से शादी कर लेती है। फिर उसका चमेली से अमृता बनने का

'टूटता तारा' भी समाज में नारी के साथ होने वाले अन्याय की ही गाथा है, जिसमें किसी स्त्री के माँ न बन पाने का सारा दोष स्त्री पर ही मढ़ दिया जाना है, भले ही पुरुष में ही कोई कमजोरी हो।

इस कहानी की नायिका 'तारा' अपनी चतुराई का प्रयोग कर दूसरे पुरुष से संबंध बनाकर गर्भ धारण कर लेती है और



पुस्तक - आदमी की नब्ज (कहानी संग्रह)  
लेखक - राम गोपाल 'भावुक'  
प्रकाशक - लोकमित्र प्रकाशन दिल्ली  
पेज - 136  
मूल्य - 225/-

केवल कई समस्याओं से मुक्त हो सकती है, बल्कि सफल भी हो सकती है। बस थोड़े से आत्मविश्वास को जागृत करने की जरूरत है। उनके पात्रों से सिद्ध होता है कि नारी का शिक्षित और आत्मनिर्भर होना भी आवश्यक है। 'विजया' कहानी की विजया, 'बेहतर उम्मीद में स्त्री' की भी विजया, और 'आज की स्त्री' की सुमन को जीवन के कठिन निर्णय लेने में शिक्षा बहुत मदद करती है।

संकलन की शीर्षक कहानी 'आदमी की नब्ज' एक गरीब मजदूरिन की लड़की चमेली की कहानी है, जिसमें वह अपनी सुंदरता और चतुराई का प्रयोग करके विधायक बन जाती है, क्योंकि उसने पुरुष वर्ग की नब्ज पहचान ली है। सरदार अमीर सिंह, जिसके यहाँ चमेली और उसकी माँ आश्रय किए हुए हैं, वहाँ सरदार का बेटा बलबीर उसके

सफर उसकी चतुराई की कहानी है। वह सुनील के जाटव वोट, बलबीर के सिख वोट और आदिवासी वोट के धुवीकरण से विधायक का चुनाव जीत जाती है। वह बलबीर, सुनील व दूसरे राजनेताओं और युवाओं की नब्ज पहचानती है और यथायोग्य सब का उपयोग कर चमेली से अमृता विधायक बन जाती है।

'विजया' समाज में लड़कियों के साथ प्रायः घटित होने वाली कहानी है, जिसमें लड़की का चालाक प्रेमी धोखे से उसका अश्लील वीडियो बनाकर उसे ब्लैकमेल कर उसका शारीरिक शोषण करता है। लेकिन वह धीरे-धीरे लोकलाज और सभी प्रकार के भय का त्याग कर अपनी मीडिया में काम करने वाली सहेली की सहायता से थाने जाकर उस धोखेबाज प्रेमी के खिलाफ एफ. आई. आर. दर्ज करा देती है।

पति को भी यह विश्वास करने पर विवश कर देती है कि बच्चा उसी का है।

कहानी 'नदी के वंशज' में लेखक का गोवंश के प्रति प्रेम प्रकट होता है, इस कहानी में खेती में आधुनिक यंत्रों के प्रयोग से गोवंश पर पड़ने वाले प्रभावों और उनकी दुर्गति का सटीक चित्रण किया गया है। कहानी 'आज की स्त्री' एक सुंदर पढ़ी-लिखी और नर्स की नौकरी करने वाली लड़की सुमन की कहानी है, जिससे माँ-बाप की इच्छा से मजबूरी में एक काले-कलूटे, लेकिन पैसे वाले लड़के नकटूराम वर्मा से शादी करनी पड़ती है। माँ-बाप की यह आम धारणा होती है कि लड़के का रंग-रूप नहीं उसकी आमदनी देखी जाती है। सुमन जब शादी के बाद ससुराल पहुँचती है और नकटूराम के विचार जानती है और

उसका पशुवत व्यवहार देखती है तो वह विचलित हो जाती है और उसकी एडजस्ट करने की भावना खत्म हो जाती है... और जब ससुराल वाले तथा मायके वाले उसे नर्स की नौकरी छोड़ने को कहते हैं तो वह साफ इन्कार कर देती है। 'भले ही शादी टूट जाए पर वह नौकरी नहीं छोड़ेगी' ऐसा कहकर वह अपने अस्पताल के साथी सुरजीत की मोटरसाइकिल पर बैठ जाती है।

'ठसक' कहानी एक सफाई

कर्म परिवार की है, जो तमाम आर्थिक परेशानियों के बाद स्वाभिमान से जीना चाहता है। घरों की गंदगी साफ करने वाली महिला को भी तथाकथित उच्च वर्ग की गंदी नजरोँ और गंदी हरकतों का सामना करना पड़ता है और वह कोई सम्मानजनक काम कर इससे बचना चाहती है।

अगर 'चाइना बैंक' और 'मिश्री धोबी फागों में' कहानियों को छोड़ दिया जाए तो सभी कहानियाँ विविध वर्ग की

नारियों के इर्द-गिर्द ही हैं और इसमें लेखक का गहरा अनुभव, सामाजिक जीवन की गहरी समझ और विशेषकर नारी की दृष्टि और उसके बदलते सकारात्मक सोच का प्रकटीकरण उनकी कहानियों के माध्यम से सामने आया है।

**समीक्षक सम्पर्क :**

अनिल तिवारी

पिंक मेरिज गार्डन की गली

उन्नाव रोड़, दतिया (म.प्र.) - 475661

## सुचिंतित उपन्यास—लोकतंत्र के पहरुए |

हिंदी में राजनीति पर सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'महाभोज' है, जिसे लेखिका मन्नु भंडारी ने रचा है। अभी 2023 में एक और लेखिका पदमा शर्मा ने उपन्यास रचा है - 'लोकतंत्र के

पहरुए'। पुस्तक के आवरण पर प्रकाशित सुप्रसिद्ध आलोचक डॉक्टर बजरंग बिहारी तिवारी की पंक्तियाँ पढ़ने योग्य हैं - "जब



उपन्यास - लोकतंत्र के पहरुए!

लेखिका - पदमा शर्मा

प्रकाशक - सान्निध्य प्रकाशन, दिल्ली

पृष्ठ - 180

मूल्य - 350

लोकतंत्र गहरे संकट में है, तब लोकतंत्र के पहरुए पढ़ना विशेष महत्त्व रखता है। एक तरफ विनय पाण्डेय तो दूसरी तरफ पंडित सुदर्शन तिवारी। एक पहरुआ... दूसरा संकट।" (कवर पृष्ठ 4)

उपन्यास की कथा में पंडित सुदर्शन तिवारी द्वारा अपने अलंबरदार जगना को उसके कुनबे के लोगों की मदद से चुनाव जीतना, भांजे से उलझते

जगना को सबक सिखाना, जगना द्वारा विपक्षियों के सहयोग से सुदर्शन को छोटी-सी मात देना और अंत में सुदर्शन तिवारी का संतो के संग धिनौनी चाल चलना, जैसे मक़ाम के साथ उपन्यास

की कथा अनेक दिलचस्प मोड़ और आरोह-अवरोह से गुजरती हुई आक्रोश भरे अन्त तक पहुँचती है।

कथा का प्रमुख पात्र सुदर्शन एक घाघ राजनेता है। दूसरा दमदार चरित्र जगना अपने संरक्षक के लिए जोखिम भी उठाता है तो खुद की आबरू पर हमला होने का ताल ठोंककर बड़ा हो जाता है। लोकतंत्र का पहरुआ विनय

पांडेय को भी कहा जा सकता है, नेताओं के भीतर खाने से ब्यूरोक्रेसी के तहरखाने तक भी उसकी नजर है। सन्तो एक शान्त स्त्री पात्र है। जो पितृ सत्ता के मनमाफिक दबी हुई स्त्री है! जगना

कहता है "यह एक गूंगी गाय है, जिसे किसी भी काम में भिड़ा दो, न नहीं करती... इस के लिए पति का आदेश सर्वोपरि है, भगवान से भी और धर्मग्रंथों से भी बढ़कर..."

(पृष्ठ 40) वातावरण

की दृष्टि से चुनाव कराने की तैयारी के कलेक्ट्रेट के दृश्य, जगना के कुनबे का नाच-गान, सुदर्शन की चुनाव तैयारी और जगना के बदले रूप, बाबाओं का विवरण आदि देने में लेखिका ने अखबार कटिंग, आधुनिक सोशल मीडिया फेसबुक, वॉट्स एप, इंस्टाग्राम और यूट्यूब का भी सफल प्रयोग कर साक्षात् वातावरण खड़ा किया है। (पृष्ठ 43)



उपन्यास के संवाद कथा को गति देने वाले हैं। करण अदिवासी टोले के लोगों को सुनाता है गोत्र मतलब किली होता है। जैसे संस्कृत में 'कुलश' होता है वैसे ही किली ! (पृष्ठ 78)

इस उपन्यास की भाषा खड़ी बोली है, लेकिन पात्रों और जन सामान्य के संवाद बुंदेली, बृज प्रभावित चम्बल अंचल की भदावरी, आदिवासी बोलियों के मिले-जुले रूप में हैं। लोक में प्रचलित 'धरउल', 'साक्छात', 'हरि औतार', 'मलूक', 'सपर खोर' (पृष्ठ 41) सशक्त हैं तो अखबार की भाषा प्रतीकात्मक है। सुदर्शन के चुनाव जीतकर जगना के दूर फेंकने पर विनय पाण्डेय की प्रतीकात्मक भाषा देखिए - "राजा वही रहते हैं बस पालकी

के कहार बदल जाते हैं। जिले के एक कद्दावर नेता ने हाल में अपना विश्वस्त कहार बदल लिया है।" (पृष्ठ 100)

कमी यह है कि लेखिका ने कथा को ज्यादा विस्तार दिया है, आदिवासियों के गोत्र और प्रथा व लोककथाएँ तथा कलेक्ट्रेट में चुनावों के निर्देश, प्रशिक्षण आदि ऐसे ही दृश्य हैं।

इस उपन्यास में कर्मचारी से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिनमें चुनाव प्रक्रिया, मतदान दल की दुर्गति, आँगनवाड़ी केंद्र, गाँवों में सताए जा रहे अध्यापक आदि की दास्तानें हैं।

राजनीति सामाजिक जीवन को गहरे से प्रभावित करती है। आज के चतुर राजनीतिज्ञ हर वर्ग का उम्मीदवार वक्त जरूरत काई की तरह इस्तेमाल

करते हैं। स्त्रियाँ अभी भी राजनीति में असफल हैं, क्योंकि स्त्री के साथ समाज में इज्जत-आबरू, अस्मत् जैसे शब्द चस्पाकर के बचपन से ही उसे एक सभ्य प्राणी के रूप में जीने हेतु प्रशिक्षित किया गया है।

राजनीति में स्त्रियों की असुरक्षा, राजनीति, नौकरशाही पर सवाल उठाता पदमा शर्मा का यह उपन्यास हिंदी साहित्य में निश्चित ही एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा।

समीक्षक सम्पर्क :

रामभरोसे मिश्रा

11, राधा विहार, स्टेडियम के पीछे उन्नाव रोड, दतिया - 475661  
मो. 9406503435

## किसान चेतना का उपन्यास : आड़ा वक्त

हिन्दी कथासाहित्य में जिस किसान चेतना को प्रमुख रूप से हम प्रेमचंद के साहित्य में गुरुजात के तौर पर देखते हैं, उस किसान चेतना को प्रेमचंद ने अपने समय के यथार्थ का नैरेटिव बनाकर पेश किया है। प्रेमचंद ने किसान कथानक को प्रमुख स्थान के रूप में प्रयोग किया है पृष्ठभूमि अथवा नेपथ्य के तौर पर नहीं।

यहाँ जिस किसान चेतना को परंपरा के रूप में हम देख रहे हैं, धीरे-धीरे उसमें तब परिवर्तन आते

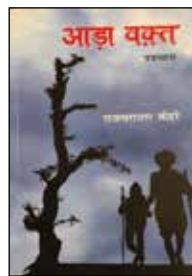
हैं। जब एक तो समय के आधार पर बदलाव हम देखते हैं और दूसरे गाँव की पृष्ठभूमि में निकालने वाले कथाकार हमारे साहित्य जगत में आते हैं। वे अपने साथ उस किसान जीवन परंपरा की पूरी चेतना, रीति रिवाज, उनके जीवन

यथार्थ के तौर पर प्रस्तुत करते हैं।

लगभग यही बदलते हुए परिवेश को हम राजनारायण बोहरे के उपन्यास आड़ा वक्त में भी देखते हैं। आड़ा वक्त की पृष्ठभूमि में जो दृश्य हम देख रहे हैं। उसमें एक तो परम्परा के

रूप में किसान का अपने खेत के प्रति आत्मिक लगाव है, दूसरी तरफ बदलते हुए समय में उभरता हुआ बाजार। वह जो आत्मिक लगाव है उसको बाजार द्वारा

क्रय-विक्रय के तौर पर भी बदला जा रहा है, पानी 'आड़ा वक्त' अपने समय



पुस्तक - आड़ा वक्त (उपन्यास)

लेखक - राजनारायण बोहरे

प्रकाशक - लिटिल वर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली

पृष्ठ - 148

मूल्य - 280

को समेटे हुए है। बड़ा वक्त जुगल किशोर के अपने खेतों के प्रति लगाव के विभिन्न रूपों में हमको दिखाई भी देता है। किसी को अपने घर से लगाव है, किसी को अपनी फैंक्ट्री और जायदाद से। किसान की रोजी-रोटी का साधन तो है ही कृषि, लेकिन उसके अलावा उसके साथ उसका आत्मिक अनुराग जुड़ जाता है। वह आत्मिक अनुराग हम दादा के अपने खेतों के प्रति ममता के रूप में देखते हैं और यह एक पूरा का पूरा एक प्रारूप बनाता है, उनके इस पात्र के माध्यम से। अपने भाई को दादा जब नौकरी प्रारंभ कराने जाते हैं, वहाँ भी गेस्ट हाउस से निकलकर जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ उनका किसान ही साथ जाता है। याद आता है जैसे सुदर्शन ने 'हार की जीत' कहानी में उपमा के तौर पर लिखा था कि जैसे किसान अपने लहलहाते खेतों को देखकर प्रसन्न होता है, उसी तरह बाबा भारती अपने घोड़े को देख कर खुश होते थे। तो शायद सुदर्शन ने दादा को वहाँ देख लिया होगा। धीरे-धीरे जो भाई या परिवार के दूसरे लोग हैं, उनके सरोकार बदलने लगते हैं। भाई जो ओवरसियर हो गए हैं उनको खेती किसान से कोई अनुराग नहीं रहा। यह भी एक समय का बदलाव है जो इस उपन्यास में रेखांकित किया गया है। तो समय से और बदलते परिदृश्य में रखते हुए हम इस प्रयास को देखें तो उपन्यास समय का आईना दिखाता है। एक समय वह था ग्रामीण कथानक का जब समाज में संयुक्त परिवार होते थे। बदलते हुए समय में एक ही परिवार में में कोई नौकरी में निकल जाता है, धीरे-धीरे के परिवार अलग होते जाते

हैं, जिन्हें हम विभाजित परिवार तो नहीं कह सकते हैं, लेकिन स्थानीय रूप से अलग-अलग हो जाते हैं। समय छल्ला नहीं लगाता, बल्कि उसमें संक्रमण होता है और यह जो संक्रमण होता है, बदलाव होते हैं वह एक ही समय में दो चीजें घटित होती रहती हैं और उनका एक काल ऐसा होता जैसे धूप और छाँव में हम एक कपड़े को छाँव में देखते हैं तो रंग जलजल दिखता है और धूप में देखते हैं तो रंग अलग दिखता है, जिसे धूप छाँव वाला रंग कहा जाता है। हम संक्रमण को इस 'आड़ा वक्त' में भी देख रहे हैं, जहाँ टिंकू अपनी जमीन को औने-पौने दामों में एमएलए को बेच आता है। यहाँ पर सीधा-सीधा बाजार दस्तक दे रहा है और यह समय के साथ चाहे यह कहें कि उसकी समझदारी ही काम दे रही हो, लेकिन इसमें जो समय का बदलाव देख रहे हैं, उसके अच्छे या बुरे होने की बात नहीं कर रहे। बदलते हुए समय में जो शक्तियाँ हैं, समय की वे शक्तियाँ कुछ लोगों के हाथों में होती हैं। एक समय था जब वे शक्तियाँ सामंतवाद के हाथ में थीं वे कहीं ना कहीं हैं और दूसरी शक्ति जो उभर कर आई है वह पूँजीवाद की है और बाजार में आदमी ना चाहते हुए भी कैसे बदलता है इसका उदाहरण वह लड़का है जो उसकी असलियत जानता है कि अब कुछ नहीं होगा, इस खेती को हम ज्यादा अच्छी जगह स्थापित करेंगे तो वह फायदेमंद होगा।

इस तरह के अपने समय के संक्रमण को पढ़ते हुए यहाँ दो-तीन-पात्रों के माध्यम से क्रम-क्रम से कहानी कही गई है उसमें सुभद्रा भी एक

जीवित पात्र है। सुभद्रा केवल कहानी में एकाध पात्र की बढ़ोतरी कर देने के हिसाब से नहीं रखी गई है। वह जब ट्रेन में बैठी हुई चल रही है तब वो दादा के खेतों की तरफ नजर उठाकर देखती है और ये जो उसकी दृष्टि जिससे वो दादा के खेतों तरफ देख रही है, उसमें बिना कहे ही बहुत सारी बातें कह दी गई हैं। यह कहानीकार का एक कौशल हो सकता है कि जहाँ दृश्य की जरूरत है वहाँ दृश्य के माध्यम से वह अपनी बात कह देता है जहाँ वाचिकता की जरूरत है, वहाँ वह संवादों के माध्यम से पात्र के भीतर की बातें निकालकर रखता है। यहाँ हम पात्रों को केवल बाहर के रूप में नहीं पढ़ते हैं उपन्यास में, बल्कि हम पात्रों के भीतरी दरवाजे खोल करके उनके भीतर प्रवेश करके उनको पढ़ते हैं। इस तरह से यह उपन्यास गांव और किसान चेतना से जुड़ा हुआ होने पर भी अपने समय के बदलाव को रेखांकित करता है और इस बदलाव के साक्षी हम जो इस बदले हुए समय के साथ रह रहे हैं, वह जब पढ़ते हैं और देखते हैं तो हमें यह उपन्यास ज्यादा आश्वस्त करता है। क्योंकि हम उसे घटित होता हुआ देखते हैं। वह इसलिए हमारे भीतर पूरी अर्थवत्ता के साथ प्रवेश करता है। यह उपन्यास की बड़ी विशेषता है।

समीक्षक सम्पर्क :

डॉ. के बी एल पांडेय

पूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

70, हाथी खाना दतिया (म.प्र.)



उपेन्द्र कुमार मिश्र



उपेन्द्र कुमार मिश्र

394

4. जलवाही, 1967 (महाराष्ट्र, उ.प्र. में)

श्रीगुरुभ्यो नमः ।

एम.ए. (हिंदी), बी.एड.

मैपुजि

अध्यक्ष एवं 'साम्प्रदायिक अभिजाति' पत्रिका के संपादक

www.elsevier.com/locate/jmb

फोटो नं. ५, कृष्ण गल

०९५. पार्श्व न. ७. म्यागौली

वाई दिल्ली - 110030

मुझे कविता दी कर आना है

गंगा नृणां हिमाल



मुझ्से कविता से  
डर लगता है



काव्य-संग्रह



### हरिप्रकाश राठी (Rathi)

जन्म : 15 जून, 1964 (आजमगढ़, उत्तर प्रदेश)

लिङ्गः । एम.ए. (भारती, संस्कृत), बी.एड.

**सूत्रक :** पुर्वनिर्धार का सूत्र (अल्पेय सूत्र), संवेद-वास (जी. रामदास) विम. को आशास्त्र), नैसर्गिक युक्त दृष्टि भी युक्तियों का अनेकी शिरी अनुवाद ।

होम, दुर्गापूजा, संहिताएं अन्तः-आचार्य सम्प्रदाय, वैदिक आचार्य, आर्य समाज, जातिवाद, इत्यादि संहिता अनेक प्रतीकित संहितात्मिक एवं व्यवसायीक पत्र-पत्रिकाओं में आर्य, कर्मागर्भ, लोक, राज, धर्मार्थ एवं अधिवार्त्त प्रकाशित। अधिकांशतः आर्य विद्युत् में लेखन।

संप्रति : उपर्युक्त एवं सहायिका तैमसिको "समाकालीन अभिप्राय" यै सह संपरक।

संपर्क :- पी- 532, (द्वितीय तल),  
कारिगरीय एम्बलेस (पी-अरिब), नई दिल्ली- 110070

मोबाइल : 9465403470

E-mail : [hstarthi@gmail.com](mailto:hstarthi@gmail.com)



मनीष पब्लिकेशन्स

Address: [info@paulperron.com](mailto:info@paulperron.com)

E-mail : [manishpublications@gmail.com](mailto:manishpublications@gmail.com)

दक्षिण, बुद्धि और पॉवर

हरिश्चंकर राव्ही

संप

हरिशंकर राठी

# दर्शन, दृष्टि और पाँव



### यात्रा-संस्मरण

Also available at : [hindi book centre / hindibook.com](http://hindi book centre / hindibook.com)

अपने गौरवशाली प्रकाशन के 21वें वर्ष में प्रवेश करने पर

# समकालीन अभिव्यक्ति

का शीघ्र प्रकाश्य अंक

## “व्यंग्य विशेषांक”

### रचनाएँ आमंत्रित हैं

स्तरीय व्यंग्य

- व्यंग्य विषयक लेख
- नये – पुराने व्यंग्यकारों तथा विविध विषयों का समावेश
- गुणवत्ता आधारित चयन

रचनाएँ ईमेल या डाक से भेजी जा सकती हैं।

**email: [samkaleenabhivyakti@gmail.com](mailto:samkaleenabhivyakti@gmail.com)**

मुद्रित पुस्तक / PRINTED BOOK

सेवा में,

प्रेषक: उपेन्द्र कुमार मिश्र

संपादक - समकालीन अभिव्यक्ति

फ्लैट नं० 5, तृतीय तल, 984, वार्ड नं० 7,

महरौली, नई दिल्ली - 110030